सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

वर्ष : 44, अंक : 2

मई – 2011

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृत-कण

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दंडेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 4/3)

अर्थात् तुम्ही स्त्री हो, पुरुष भी तुम्ही हो, तुम कुमार, तुम कुमारी भी हो और तुम्हीं दण्ड का सहारा लिये हुए वृद्ध हो, विश्व में सर्वत्र तुम्हीं हो।

◆ ◆ ◆

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता 6/29)

अर्थात् सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव से स्थितिरूप योग से युक्त आत्मा वाला तथा सब में समभाव से देखने वाला योगी आत्मा को सम्पूर्ण भूतों में स्थित और सम्पूर्ण भूतों को आत्मा में कल्पित देखता है।

◆ ◆ ◆

यद्यद् विभूतिमत् सत्वं श्रीमदूर्जितमेव वा।
तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोंऽशसम्भवम्॥

(गीता 10/41)

मनुष्यों में जहाँ अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है, समझो वहाँ मैं वर्तमान हूँ, मुझसे ही इस आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश होता है।

◆ ◆ ◆

अहं वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरेरिव। ऊर्ध्वपवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि।
द्रविणों सवर्चसम्। सुमेधा अमृतोक्षितः।

(तै. उपनिषद् 1/10)

मैं (संसार रूप) वृक्ष को हिलाने वाला हूँ। मेरी कीर्ति पर्वत के समान है। मैं वह हूँ जिसके द्वारा यह पवित्र (प्रकाश) ऊँचा उदय हुआ है, मानो सूर्य में है। मैं सुमेधा हूँ, अमृत हूँ, क्षीण न होने वाला।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 44 अंक : 2

श्रीरामचन्द्रचरणौ मनसा स्मरामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ वचसा गृणामि।
श्रीरामचन्द्रचरणौ शिरसा नमामि
श्रीरामचन्द्रचरणौ शरणं प्रपद्ये।।

मन से श्रीराम चरणों का चिन्तन, वचन से श्रीरामचरणों का गुणगान, सिर से श्रीरामचरणों में नमन और अन्ततः उन्हीं चरणों की शरण लेता हूँ।

मई 2011

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवाई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक
डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डली के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	10
3.	योग क्या है? – डॉ. जे.पी. शर्मा	12
4.	प्राण क्या है? – रघुवीर चन्द्र ठाकुर	17
5.	योग कुशल धनार्जुन – कृष्ण कुमार पाण्डेय	19
6.	योग में चंचल मन का व्यवधान – डॉ. जयनारायण राय	22
7.	आश्रम समाचार	25
8.	सद्गुरु कृपालीला प्रसंग – जगदीश राय बंसल	26
9.	भक्ति भक्तस्य जीवनम् – ब्रह्म सिंह	28
10.	कामाख्या जी का दर्शन – डॉ. विजय सिंह	30
11.	श्री गुरुदेव की जादूगिरी – केशव देव उपाध्याय	33
12.	श्री गीतामृत पद्यावली – प्रेषक: डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी	37

एक प्रति	: रु. 11.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 140.00
त्रिवार्षिक	: रु. 270.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 850.00

● *हमारा विशेष लेख*

सिद्धों का शक्तिपात एवं योगदीक्षा

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सारा संसार शक्ति के आधार पर चलता है। मनुष्य के मान, सम्मान, यश और वैभव का आधार शक्ति है। जहाँ पर मनुष्य को शक्ति दिखलाई देती है, वह उसका सेवक बन जाता है। संसार में जितनी उपासनायें प्रचलित हैं वे नाम रूप के छद्म से शक्ति की उपासना हैं। हम भगवान राम, कृष्ण, विष्णु, शिव, सदाशिव, महामाया भगवती दुर्गा आदि देवताओं की उपासना में लगे रहते हैं। किंतु आप लोगों ने कभी यह विचार कर नहीं देखा होगा कि हमारे हृदयों के अन्दर इनकी उपासना का मूल कारण क्या है। ऊपर की आकृति देखने से भगवान श्रीराम मानवाकृति हैं। श्रीकृष्ण, श्री शिव, गणेशजी, भगवती दुर्गा ये सब भी मनुष्य की आकृति में ही छिपे हुए महा तेज हैं। किंतु इन सभी में आत्म-तेज को दर्शाने वाली केवल मात्र शक्ति है। जिसके चमत्कार को देखकर मनुष्य ने जान लिया कि मानवाकृति में छिपे हुए ये किसी महान शक्ति के अधिष्ठान हैं। श्रीराम का समुद्र पर सेतुबन्धन करना, राक्षसों को युद्ध में पराजित करना। ऋषियों की रक्षा करना यह सब किसी भीतरी शक्ति के परिचायक हैं जिससे मनुष्य की मानवाकृति में छिपे हुए परम तेज का दिग्दर्शन होता था। इसी प्रकार श्री कृष्ण की अलौकिक लीलायें, अघासुर, बकासुर का वध करना, कालीय मर्दन, गोवर्धन धारण आदि लीलायें उनकी महान शक्ति की परियाचिका हैं। यही उदाहरण भगवान शिव भगवती दुर्गा व अन्य सभी पीर पैगम्बरों पर लागू है। जहाँ अथवा जिसमें शक्ति बाहुल्य, दिखलाई देता है वही मनुष्य का आराध्य देव व इष्ट देव है। मनुष्य शक्ति से खाली है इसलिए 'मनुष्यो देवानाम् पशुः' मनुष्य देवताओं का पशु रहता है और उनका आराधक रहता है। क्योंकि वे विशेष शक्ति का अधिष्ठान हैं। मनुष्य जिस समय जन्म धारण करता है तब वह शक्ति के बहुत बड़े कोष को अपने साथ लेकर आता है। किंतु ज्यों-ज्यों संसार के प्रपंचों में फँसता जाता है त्यों-त्यों उसकी शक्ति का ह्रास होता चला जाता है और अन्ततः समय आने पर वह काल के गाल में चला जाता है। भर्तृहरि ने निम्न श्लोक में मनुष्य की आयु का विभाग बड़े सुन्दर ढंग से चित्रित किया है। वे लिखते हैं-

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ, तदर्धं गतं तस्यार्द्धस्यपरस्य चार्द्ध
मपरं बालत्ववृद्धत्वयोः शेषं व्याधि वियोग दुःख सहितं सेवादि
भिर्नीयते जीवे वारि तरंग चंचल-तरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम्।।

अर्थात् मनुष्य की आयु अधिक से अधिक 100 वर्ष की कही गई है। उसका आधा भाग रात्रियों में निकल गया। शेष आधे भाग का आधा भाग बुढ़ापे व जवानी में निकल गया, उसमें से कुछ भाग आदि–व्याधि दुख व सेवा आदि में गया। शेष चंचल वारि तरंग के समान विलीन हो गया। इस मनुष्य जीवन में प्राणियों को सुख कहां हो सकता है।

मनुष्य शक्ति का केन्द्र बन कर आता है क्योंकि उसका आधार भी शक्ति है। ज्यों–ज्यों संसार चक्र में उलझता जाता है। त्यों–त्यों ही उसकी शक्ति का व्यय और अपव्यय होता रहता है। मनुष्य का कोई क्रिया–कलाप ऐसा नहीं जिसमें उसकी शक्ति का निष्काशन न होता रहता हो। यदि मनुष्य वाणी के द्वारा कोई शब्द कहता है तो वे शब्द वाणी की शक्ति के द्वारा दूसरों पर प्रभाव डालते हैं। इसी प्रकार मनुष्य किसी को आँख से देखता है तो उसकी आँखों की शक्ति का प्रभाव दूसरे व्यक्ति पर पड़ता है। इसलिए साधारणतया आँखों के सामने होने वाले कार्य कलापों को ही ठीक समझा जाता है। इसी प्रकार यदि कोई किसी से प्यार करता है तो वह अपने प्यार के अभिनय से उसको अपनी शक्ति देता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जितनी शक्ति जिस व्यक्ति में होती है वह अपनी वाणी के द्वारा, दृष्टि के द्वारा, मन के द्वारा दूसरे लोगों को दिया करता है और जिन्हें यह शक्ति प्रदान की जाती है उनका भला भी यत्किंचित होता है। इसके अतिरिक्त जो लोग शक्ति के केन्द्र हैं, सर्व सामर्थ्यवान हैं उनके द्वारा वही शक्ति दुगने चौगुने रूप में परिस्फुरित होकर लोगों को प्राप्त हुआ करती है और उतना ही अधिक उन लोगों का भला होता है जिन पर शक्तिपात होती है। हमने इससे पिछले लेख में 'सिद्धयोग' का वर्णन किया था। 'सिद्ध' वह कहलाते हैं जो सब प्रकार से सामर्थ्यवान हैं और युक्त योगी हैं। जगदात्मा भगवान् श्री कृष्ण ने गीता के छठे अध्याय में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार कहा है–

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्टाश्मकाञ्चनः।।

अर्थात् जिसकी आत्मा ज्ञान–विज्ञान से पूर्णरूपेण तृप्त है और जो विकार रहित पूर्ण स्थिति को पहुँच चुका है उसको युक्त योगी कहते हैं। ज्ञान–विज्ञान तृप्तात्मा का अर्थ है– प्रकृति के सारे नियमों को समझ करके उस पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करना। विज्ञान तृप्तात्मा और पूर्णरूपेण आत्मसाक्षात्कार कर लेने का नाम विज्ञान तृप्तात्मा कहलाता है। जो योगी इस प्रकार की स्थिति में पहुँच जाता है उसका मन विकार रहित हो जाता है और वह अपने स्वरूप में स्थित रहा करता है। इसी प्रकार के योगी सिद्ध कहलाते हैं। ये लोग सब प्रकार से पूर्ण सामर्थ्यवान् और शक्तियों के दाता होते हैं। अपनी परिपूर्णतम स्थिति को पाकर यही योगाचार्य सर्व साधारण के हितार्थ शक्ति संचार किया करते हैं। इसी का नाम शक्ति पात है। इस शक्तिपात की विभिन्न प्रकार की कई गतियाँ हैं जिनके द्वारा प्राणीमात्र में शक्ति संचारित हुआ करती है। जैसा कि हमने ऊपर इसी लेख में लिखा है कि मनुष्य शक्ति को लेकर संसार

में जन्म लिया करता है और वह अपने जीवन–काल में जितनी शक्ति उसके मन के खजाने में जमा रहती है उसका प्रयोग अपनी इन्द्रियों के द्वारा लोगों पर करता रहता है और उसके प्रभाव से जितना भी हो सकता है लोग लाभ उठाते हैं। शक्ति संचार का मार्ग सर्व साधारण के लिए भी वही है और पूर्ण सिद्धों के लिए भी वही है। किंतु विशेषता इतनी रहती है क्योंकि सिद्ध लोग शक्ति के केन्द्र होते हैं इसलिए उनका प्रभाव क्षण–प्रतिक्षण संसार में आने वाले व्यक्तियों पर पड़ता ही है। इसी कारण इस प्रकार के योगी के लिए कहा गया है–

यस्मिन देशे वसेद्योगी, ध्यान योग विचक्षणः।
सोऽपिदेशो भवेत् पूतः, किम्पुनस्तस्य बान्धवाः।।

अर्थात्– जिस देश में एक ध्यान योगी वास करता है वह देश भी पवित्र हो जाता है। उसके भाई–बान्धवों का तो कहना ही क्या? इसका कारण केवल मात्र इतना ही है कि सिद्ध योगी सर्व सामर्थ्यवान् होते हैं। इसलिए उनका मन जिस–जिस के प्रति जैसे–जैसे संकल्पों से पूर्ण होगा उसका उसी प्रकार का परिणाम हो जाना बिल्कुल सम्भव है। जिस समय मनुष्य परम पुन्योदय हो जाने के बाद सिद्ध–संगति को प्राप्त होता है तो सिद्ध लोग उसे दीक्षा देकर उसमें भी पूर्ण रूपेण शक्ति का उत्थान कर देते हैं।

सिद्धों का दीक्षा–प्रकार और शक्ति–पात

संसार में गुरुदेव का शिष्यों से सम्बन्ध की स्थापना के लिए एक विशेष प्रकार की क्रिया–कलाप है, इसके अनुसार शिष्य गुरुदेव के पूजनार्थ, वस्त्रानुभूषण आदि लेकर आया करते हैं और विधिपूर्वक दीप, धूप, नैवेद्य अर्पण करके गुरुदेव का ईश्वरीय पूजन करके मंत्रोपदेश ग्रहण करते हैं यह दीक्षा की साधारण विधियाँ हैं, जो साधारण रूप से आस्तिक समाज में प्रचलित हैं। इस विधि के पालन कर लेने पर गुरु–शिष्य के बीच में एक नया सम्बन्ध कायम हो जाता है। गुरुदेव समझते हैं यह मेरा शिष्य है और शिष्य समझता है यह मेरे गुरुदेव हैं। इस सम्बन्ध के स्थापित हो जाने पर गुरु–शिष्य का सम्बन्ध दृढ़तर हो जाता है और शिष्य अपने गुरुदेव की आज्ञाओं का पूरा–पूरा पालन करने का प्रयत्न करता है। वस्तुतः दीक्षा शब्द का अर्थ क्या है? उसका ग्रन्थों में इस प्रकार का वर्णन मिलता है:–

दिव्य ज्ञानं यतोदद्यात् कुर्यात्पापक्षयं ततः।
तस्मात् दीक्षेति सा प्रोक्ता सर्व तंत्रस्य सम्मता।।
ददाति शिवतादात्म्यं क्षिणोति च मलत्रयम्।
अतो दीक्षेति संप्रोक्ता दीक्षातंत्रार्थ वेदभिः।।
दीयते परमं ज्ञानं क्षीयते पाप पद्धतिः।
तेन दीक्षोच्यते मंत्रे स्वागमार्थबलाबलात्।।

अर्थात् जिस क्रिया के द्वारा दिव्य ज्ञान दिया जाय एवं पाप क्षय करके शिवतादात्म्य

को प्राप्त कर पूर्णरूपेण समाहित हो जाय उस क्रिया का नाम दीक्षा है। हमारे शास्त्रों में दीक्षा के चार प्रकार प्रमुख हैं, जो सिद्धों के द्वारा ही किये जाते हैं, सिद्ध लोग अपने नेत्रों से, स्पर्श से, संकल्प से या शब्दों से दीक्षा दिया करते हैं। इसका वर्णन इस प्रकार मिलता है–

श्लोक

गुरोरा लोक मात्रेण भाषणात्स्पर्शनादपि।
सद्यः संजायते ज्ञानं सा दीक्षा शांभवीमता।।
देशिकानुग्रहेणैव शिवता व्यक्तकारिणी।
सेयन्तु शांभवी दीक्षा शिवा देशस्य कारिणी।
चरणद्वय संभूता शांभवी शीघ्रसिद्धिदा।।

अर्थात् गुरुदेव के देखने मात्र से, बोलने से स्पर्श या करने से जिसको जल्दी ज्ञान पैदा हो जाय, इस दीक्षा को शांभवी दीक्षा कहा गया है। इसके द्वारा मनुष्य जल्दी ही शिव सारूप्यता को प्राप्त करता है। गुरुदेव मन से प्रसन्न होकर अपनी शक्ति को देखें के द्वारा शिष्यों को देते हैं। इसका नाम दृग–दीक्षा है।

दृग–दीक्षा

नेत्रों में इतनी बड़ी शक्ति होती है और नेत्रों के द्वारा शक्ति को बढ़ा करके क्या–क्या किया जाता है? इसका परमोत्कृष्ट उदाहरण आदि गुरु भगवान श्रीकृष्णचन्दजी की जीवनी में बड़े स्पष्ट शब्दों में मिलता है। एक बार जगदात्मा भगवान श्री कृष्णचन्द जी श्री वृन्दावन धाम में गाय चरा रहे थे। गायें और ग्वालवाल शनैः शनैः जमुना तट पर पहुँच गये। जमुना का वह तट था जहाँ पर कालीय नाग निवास किया करता था। उस स्थान को कालीदह कहते हैं। वहाँ पर गर्मी से तपे हुए ग्वाल–वालों ने जल पिया और पीकर सभी मूर्छित हो गये:–

अथ गावश्च गोपाश्च निदाघात पपीडिताः,
दुष्टं जलं पपुस्तस्या– स्तृषार्ताविषदूषितम्।।
विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः।
निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरुद्वह।।
वीक्ष्य तानवैतया भूतान कृष्णो योगेश्वरेश्वर।
ईक्षयाऽमृत वर्षिन्या स्वनाथान्सम जीवयत्।।

अर्थात् गायों, ग्वालों और गोपों ने गर्मी से पीड़ित होकर जमुना तट पर जाकर प्यास के कारण विदूषित जल को पी लिया और उसके पीने से उनके प्राण शरीर से निकल गये किंतु थोड़ी ही देर के बाद योग योगेश्वर जगदात्मा श्रीकृष्ण ने अमृत वर्षाने वाली अपनी दृष्टि से देखा और अपने जानकर उन सबको क्षण भर में जिन्दा कर दिया। ये जगदात्मा श्रीकृष्ण की पवित्र दृष्टि का प्रभाव था कि मरे हुए ग्वाल–बाल और गायें जिनके प्राण शरीर से निकल गये

थे फिर जिन्दा हो गये। श्री गुरुदेव जिस समय अपनी कृपामय दृष्टि से अपने शिष्यों को निहारते हैं उनके अन्दर शक्ति संचारित होकर विविध प्रकार के अनुभव उनके सामने आने लगते हैं और उनका मन जो अभी तक कभी भी समाहित नहीं होता था समाहित होने लगता है। इसी दीक्षा को हमारे ग्रन्थों में दृग–दीक्षा कहा गया है।

वाग्दीक्षा

यह दूसरे प्रकार की दीक्षा है। यह वाणी में दी जाती है। सामर्थ्यवान गुरुदेव अपने मन में संचित हुई शक्ति को वाणी के द्वारा अपने शिष्यों में संचारित करते हैं, उसी का नाम वाग्दीक्षा है। गुरुदेव मंत्र को चैतन्य बनाकर के अपनी वाणी के द्वारा उच्चारण किया करते हैं जिस मंत्र के अन्दर गुरुदेव का शक्ति संचार नहीं है। वह केवल मात्र कजाल ही है। र,म,च,ट,स,प, ये सारे के सारे वर्ण हैं और उनका उत्पत्ति स्थान आकाश है। सभी मंत्रों के अन्दर स्वर और व्यंजन मिले रहा करते हैं। राम शब्द भी इन्हीं अक्षरों से बनता है और काम शब्द भी इन्हीं अक्षरों से बनता है। राम, काम, शाम, दाम हम किसी भी शब्द को उच्चारण करें उसका तब तक कोई भी अर्थ नहीं तब तक इसके उच्चारा में मन का योग नहीं। इसलिए मंत्र भी तब तक मंत्र नहीं है जब तक उसके अन्दर चैतन्यता प्रदान करके गुरुदेव अपने मुखारबिन्द से उपदेश नहीं करते। शक्ति पूर्वक वाणी के द्वारा शब्दोपदेश करना ही वाग्दीक्षा का मूल तत्व है। ठीक प्रकार से की गई यह दीक्षा ही मनुष्य को अवश्य परम श्रेय तक पहुँचा देती है। अभी पिछले दिनों कई वर्ष पहले जिला महेन्द्रगढ़ में झोझूकला गाँव में हमें जाने का अवसर प्राप्त हुआ। उस गाँव के आसपास छोटी–छोटी खुश्क पहाड़ियां हैं। स्वयं वह गाँव भी एक पहाड़ी पर बसा हुआ है। उस गाँव के निवासियों ने हमें एक अद्‌भुत घटना बतलाई और साथ जाकर वह स्थान दिखलाया जहाँ पर पहाड़ की एक चोटी टूट जाने से उसके अन्दर एक गुफा निकली और अचानक उस गुफा से एक सिद्ध योगीराज निकले जिनकी आयु हजारों वर्ष की मालूम पड़ती थी। दाढ़ी और सिर के बाल सफेद थे। जिस समय वह महात्मा गुफा से बाहर निकले अकस्मात् उनकी दृष्टि के सामने एक पुजारी पड़ा। पुजारी बहुत बड़ा स्वाध्यायशील था उसने बहुत बड़े मन्त्रों के अनुष्ठान किये थे किंतु वह अभी तक किसी प्रकार की सफलता नहीं पा सका था। योगदर्शन का लेख है–

स्वाध्यायदिष्ट देवता सम्प्रयोग:, देवा, ऋषय:, सिद्धाश्च, स्वाध्याय।
शीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्ये चाम्य वर्तन्त इति।।

अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति को अपने इष्टदेव के अवश्य दर्शन होते हैं और उसके अतिरिक्त ऋषियों, सिद्धों के भी दर्शन होते हैं वह उनके काम कर दिया करते हैं किंतु पुजारी अपने तीव्रतम् स्वाध्याय व तप के किसी भी परिणाम को अभी तक नहीं पा सका था किंतु ज्योंही यह पहाड़ टूटने पर यह योगिराज गुफा से बाहर निकले पवित्र दृष्टि से उस पुजारी की ओर देखा और साथ–ही–साथ उस महात्मा ने अपनी वाणी से **'हरी हर बोल बेटा'** यह कह

करके वाग्दीक्षा दे दी, जिसके परिणाम स्वरूप पुजारी में तत्काल अनुभूतियां जारी हो गई और वह दिव्य दर्शनों का अधिकारी बन गया। थोड़े समय में ही पुजारी ने अपने-आपको सकल सिद्धियों का भाजन बना लिया। उस गाँव के लोगों ने हमें बतलाया कि उस पुजारी के द्वारा भी अनेक लोगों को वरदान प्राप्त हुए।

स्पर्श-दीक्षा

परम करूणांणव गुरुदेव अपने शिष्यों में शक्ति संचार करने के लिए कृपापूर्वक जब उनके शिरों से अपने हाथ स्पर्श करते हैं उसको स्पर्श-दीक्षा कहते हैं। सिर से कर स्पर्श कराने का नियम हमारे भारतवर्ष में ऋषियों के समय से बराबर चला आ रहा है। साधारणतया छोटे लोग बड़ों को नमस्कार करते हैं और बड़े लोग अपने शिष्यों का कर स्पर्श करके आशीर्वाद देते हैं। यह रीति हमारे भारतवर्ष में ही है दूसरे देशों में नहीं है। मनुजी महाराज का लेख है-

नित्याभिवादन शीलस्य नित्य वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्त आयुर्विद्या यशोबलम्।।

भगवान मनु का यह संकेत स्पर्श-दीक्षा की ओर ही है। छोटे बड़ों को नमस्कार करें। यह भी स्पर्श-दीक्षा का ही संकेत है। हमारे सिद्ध योगिराज के इतिहास में स्पर्श-दीक्षा का स्थान बहुत ऊंचा है। हरेक व्यक्ति के हाथों की उंगलियों से तेजस्वी धारायें निकलती रहती हैं और ये धारायें साधारण लोगों की अपेक्षा योगिराज लोगों के हाथों में अति ही तीव्रतम् देखने में आती हैं। जब कोई गुरुदेव अपने शिष्यों के सिर को दाहिने हाथ से स्पर्श करके आशीर्वाद देता है और कहता है, आयुष्मानभव! इसका अर्थ यह है कि उसकी आयु वृद्धि अवश्य ही होगी। कुछ समय पहले उज्जैन में डॉ. दुर्गाशंकर नागर निवास करते थे और वह स्पर्श शक्ति के द्वारा रोगियों का इलाज किया करते थे। बीमार मनुष्य को जमीन पर लिटा लेते थे और उसके सिर से लेकर पैर तक हाथ के स्पर्श से औपचारिक ढंग से रोग निवारण करते थे। यह भी हाथ की उंगलियों से निकले विद्युत-प्रवाह की शक्ति का एक संकेत है। कलकत्ते में श्रीरामकृष्ण परमहंस निवास किया करते थे। उनके सामने विवेकानन्द आये और उन्होंने अपनी जिज्ञासा को जाहिर किया। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने श्री विवेकानन्द को स्पर्श-दीक्षा देकर शक्ति संचार किया उसके फलस्वरूप विवेकानन्द में महान् शक्ति का उदय हुआ और उसके फलस्वरूप उन्होंने देश विदेश में योग का बहुत प्रचार किया। स्पर्श-दीक्षा के विषय में कुलार्णव तंत्र में इस प्रकार का लेख मिलता है:-

यथा पक्षी स्वपक्षाभ्यं शिशून संवर्धयेच्छनैः।
स्पर्श दीक्षोपदेशश्च तादृशः कथितः प्रिये।।

अर्थात् जिस प्रकार पक्षी अपने पंखों के स्पर्श से अपने बच्चों को बढ़ाया करता है इसी प्रकार स्पर्श-दीक्षा में गुरुदेव अपने बच्चों को बढ़ाया करते हैं।

संकल्प–दीक्षा

संकल्प दीक्षा के विषय में कुलार्णव तंत्र में लिखा है–

यथा कूर्मः स्वतनयान्ध्यान– मात्रेण पोषयेत्।

वेध दीक्षा पदेशश्च मानुषस्य तथाविधः।।

अर्थात् जिस प्रकार से कछुआ चिन्तन मात्र से अपने बच्चों की पुष्टि करता है इसी प्रकार गुरुदेव संकल्प मात्र से अपने शिष्यों की पुष्टि किया करते हैं। जिसका मन शक्तिशाली है वह जिसका हिताहित चिन्तन करता है उसका मन चिन्तित प्राणी पर अवश्य होता है। एक बार एक महात्मा दिल्ली में योग–प्रचार कर रहे थे। महात्मा अच्छे शक्तिवान् व अन्तर्दृष्टि वाले थे। उनका एक शिष्य कहीं पर बीमार हो गया उस बीमार शिष्य का बहुत बार स्मरण होता रहा उसकी कुशलता पूछने के लिए उन्होंने अपने एक शिष्य को भेजा और उपचार के लिए एक वैद्य को भेजा, खाने के लिए कुछ फल भेजे किंतु जाने वालों ने लौट करके जल्दी खबर नहीं दी कि उनके उस बच्चे का क्या हाल है? महात्मा की चिन्ता अधिक से अधिक बढ़ती गई और बार–बार चिन्ता करते ही रहे। सायंकाल के समय सत्संग में उनका एक शिष्य आया उसने हाथ जोड़ कर विनय पूर्वक कहा – 'गुरुजी आप इतनी चिन्ता क्यों कर रहे हैं? वह तो बिल्कुल राजी हो गया।' महात्मा ने कहा – 'तुम्हें क्या पता?' उसने कहा– 'मुझे निश्चय ही कुछ पता नहीं किंतु, क्योंकि आप चिन्ता कर रहे हैं, अतः उसका कोई बाल–बांकरा नहीं कर सकता। वह बिल्कुल ठीक होगा।' बात बिल्कुल सही निकली। योगिराज का शक्तिवान् मन अपने जिस बच्चे की चिन्ता कर रहा था वह बिल्कुल पूर्णरूपेण स्वस्थ हो गया। जिस समय वह महात्मा उसके लिए अत्यधिक चिन्तित थे ठीक उसी समय उस बच्चे ने देखा कि गुरुदेव सिरहाने बैठे हुए और उस बच्चे का सिर अपनी गोद में लिये हुए हैं। वह बालक देखता है कि यमराज सामने है मृत्यु का समय है। उसके गुरुदेव मचान पर जाकर बैठ गये और उसी मचान पर अपने उस बालक को बुला लिया। जब उस बालक ने देखा कि यम उस पर वहाँ भी प्रहार करना चाहता है तब श्री गुरुदेव शून्य आकाश में खड़े होकर कहने लगे–बेटा तुम यहाँ चले आओ। गुरुदेव के इशारे पर वह बच्चा भी शून्य आकाश में खड़ा हो गया और फिर वह बिल्कुल स्वस्थ हो गया। दो दिन बाद योगिराज को सन्देश मिला कि उनका वह बालक पूर्णरूपेण स्वस्थ है। उस बालक का स्थल भाग से मचान पर पहुँचना अण्ड से ब्रह्माण्ड में जाना था और मचान से शून्य आकाश में पहुँचना ही शून्य शिखर में पहुँचना है। यह स्थान काल के अधिकार से परे हुआ करता है। अतः गुरुदेव जिस बालक के लिए अपने मन से शुभ संकल्प रखेंगे और हितार्थ चिन्तन करते रहेंगे तो दिन–प्रतिदिन वो पुष्टि को पाता रहेगा और शक्ति संचारित होती रहेगी। इसका नाम संकल्प–दीक्षा है जिससे संकल्प द्वारा ही शक्ति संचार किया जाता है।

जहाँ इष्ट होता है वहाँ अनिष्ट नहीं होता

योगाचार्य डॉ. दासलाल ब्रह्मचारी

क्षण-क्षण स्मरणीय मेरे गुरुदेव योगिराज श्री प्रभु चन्द्रमोहन जी महाराज प्राय: कहा करते थे, जहाँ इष्ट होता है वहाँ अनिष्ट नहीं होता। इसलिए वे हमेशा ही श्री प्रभु जी के अनन्य चिन्तन, स्मरण की आज्ञा दिया करते थे। इष्ट का स्मरण करने वाले के ग्रह-नक्षत्र एवं समस्त प्रकृति भी अनुकूल हो जाती है। श्री मद्‌भगवद्‌गीता में भी भगवान 'तस्मात् सर्वेषु कालेषु योग योग युक्तोभर्वाजुन' की बात कहते हैं। भक्त का इष्ट के प्रति अनन्य समर्पण हो अर्थात् एक ही इष्ट को सबसे बड़े, सर्वसमर्थ व परात्पर मान कर एक के ही परायण रहे। यदि भक्त इष्ट को बदलता रहता है तो उसे कभी सफलता नहीं मिला करती इसे व्याभिचारिणी भक्ति कहा गया है। अर्थात् अपनी निष्ठा को मनोकामना की पूर्ति न होने पर इष्ट को बदलते रहते हैं। यदि हमें कुँआ खोद कर जल पाने की इच्छा हो तो काफी गहराई तक खोदना पड़ेगा जब तक जल न मिल जाये। थोड़ी खोद ली और छोड़ कर अन्यत्र खोदने लगे, इस प्रकार बदल-बदल कर खोदने से सफलता नहीं मिला करती है। इसलिए एक ही इष्ट को सर्वोपरि मान कर चलना चाहिए। ज्ञानमय क्षेत्र का वर्णन करते हुए गीता में तेरहवें अध्याय में भगवान् कहते हैं- मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचाररिणी' अर्थात् अव्यभिचारिणी भक्ति से जो मेरी उपासना करता है। अर्थात् मुझे ही सर्वोत्कृष्ट मानकर चिन्तन करता है तो वह ज्ञानमय क्षेत्र का स्वामी है अत: मुक्तिभाजन हो जायेगा। इसी तरह से चौदहवें अध्याय में भी

मां च योऽव्यभिचारेण भक्ति योगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते।।

अर्थात् जो अव्यभिचारिणी भक्ति से भगवान् का चिन्तन स्मरण करता है वह भक्त तीनों गुणों से पार होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। गीता के नवें अध्याय में भगवान् पुन: कहते हैं जो अनन्य भाव से मेरी पूजा - उपासना करता है। उसके योग और क्षेम को मैं स्वयं वहन करता हूँ। अर्थात् अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करा देता हूँ और प्राप्त वस्तु की रक्षा भी स्वयं करता हूँ। भक्त के इष्टदेव निर्गुण भी हो सकते हैं तथा सगुण भी। किंतु जैसा कि भगवान ने गीता के बारहवें अध्याय में कहा है कि निर्गुण की उपासना कठिन है दु:साध्य है किंतु सगुण उपासक की साधना सरल है यद्यपि निर्गुण भी मैं ही हूँ फिर भी सगुणोपासक मुझे शीघ्र पा जाते हैं 'तेषामहं समुद्धर्ता मृत्यु संसार सागरात्' उन्हें मैं शीघ्र ही मृत्यु रूपी संसार से पार कर देता हूँ क्योंकि वे 'मय्यावेशित चेतसाम्' हैं अपने चित्त को मुझ में लगाये रहते हैं।' निर्गुण उपासक को अपने

लक्ष्य तक पहुँचने के लिए भटकाव की संभावना अधिक है. कई जन्मों का चक्कर बन जाया करता है। साधक अपने कई–कई जन्मों की पुंजीभूत संस्कारों के अनुसार ही अपने इष्ट देव का चयन करता है जो एक निष्ठ भक्त है, वे ही प्रभु को पाने में सफल होते हैं। जिनका एक ही इष्ट निश्चित है तथा अनन्य भाव से निरन्तर चिन्तन करते हैं ऐसे भक्तों पर संकट आने पर भगवान् उनकी रक्षा कर लेते हैं। संकट के घोर कष्ट के समय में गज की ग्राह से रक्षा करना, चीर हरण के समय द्रोपदी के लाज की रक्षा करना, लाक्षागृह में बन्द पाण्डवों की रक्षा करना आदि ऐसे उदाहरण हैं जब भगवान् ने संकट के क्रूर काल में तत्काल भक्तों की रक्षा की। लोग कहा करते हैं– भगवान् ने कष्ट के समय अमुक की रक्षा की, संकट से छुड़ाया किंतु हम भी संकट में हैं हमारी रक्षा नहीं कर रहे हैं। प्राचीन काल में ही रक्षा होती थी अब नहीं होती है। किंतु यह कहना ठीक नहीं है। यदि हमारी रक्षा नहीं हो रही है तो हमें देखना होगा हम भगवान् का कितना चिन्तन करते हैं। भगवान् ने तो घोषणा की है कि मेरे भक्त, का कभी नाश नहीं होता– 'न मे भक्त: प्रणश्यति।' श्रद्धा और प्रेम के बन्धन में ही भगवान् भक्तों पर कृपा करते हैं– संकट के समय रक्षा करते हैं और बुद्धियोग प्रदान कर मुक्ति भाजन बना देते हैं। श्रद्धा का भक्त के जीवन में अत्यन्त महत्व है। 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्' श्रद्धावान् को ही परमात्मा–ज्ञान व आत्मज्ञान हुआ करता है। योग सूत्रों पर भाष्य करते हुए भगवान् व्यासदेव जी कहते हैं–

श्रद्धा चेतस: सम्प्रसाद: सा हि जननीव कल्याणी योगिनम् पाति' अर्थात् श्रद्धा इष्ट के प्रति चित्त की प्रसन्नता है चित्त का सम्प्रसारण है। श्रद्धा के कारण भक्त का चित्त कमल की भांति खिल जाता है वह भगवान् के नाम का गुणगान करते ही रोमांचित हो जाता है। उनकी याद में भक्त के श्वासों की गति तेज हो जाती है भस्त्रिका प्राणायाम होने लगता है फिर पुन: प्राणों की गति को सम करके निश्चल भाव से समाधिस्थ हो जाता है। श्रद्धालु भक्त का इष्टदेव के प्रति रोम–रोम पुलकित रहता है। जो उच्च कोटि के भक्त हैं जो गुरुदेव एवं इष्टदेव में कोई अन्तर नहीं देखते उन्हें श्रद्धा से रोमांचित, पुलकित देखा जाता है। अपने गुरु दरबार में ऐसे भक्तों को प्राय: देखा जा सकता है, जो गुरुदेव की याद में भाव विभोर रहते हैं शरीर की सुध–बुध नहीं रहती। योग की कठिन से कठिन क्रियायें गुरु कृपा से होते देखे जाते हैं।

सिद्धयोग परम्परा में गुरुदेव ही शिष्य का इष्ट होता है। ईश्वर भाव से गुरुदेव का चिन्तन करने वालों को भुक्ति और मुक्ति अनायास ही सुलभ हो जाती है। उपनिषद् में आया है कि जिस साधक की इष्टदेव में पराभक्ति है वैसे ही भक्ति गुरुदेव में हो तो उस महापुरुष के सामने वेदवाक्य प्रकट हो जाते हैं और वेद मंत्रों का अर्थ उसे स्वत: ही ज्ञात हो जाता है। यह है इष्ट भक्ति या गुरु भक्ति का दिव्य फल। इसी के लिए साधक सदा प्रयत्नशील रहा करते हैं।

योग क्या है?

डॉ. जे.पी. शर्मा, पौंटा साहिब, जि. सिरमौर, हिमाचल प्रदेश

योग शब्द 'युज समाधौ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'समाधि'। 'युजिर योगे' धातु से भी योग शब्द बनता है। जिसका अर्थ है 'जुड़ना' अर्थात् जीवात्मा का परमात्मा के साथ एक हो जाना। अंकगणित की भाषा में एक और एक का योग दो बनता है, उसी प्रकार दो और दो का योग चार कहलाता है। आध्यात्मिक रूप से मनुष्य पूजा, भक्ति, ध्यान के साधनों द्वारा भगवान के साथ एकरूपता बनाने के प्रयत्नों को योग कहते हैं। जब प्राणी में जीवत्व भाव का लोप होने लगता है तथा परमात्मतत्व या ब्रह्मत्व भाव उत्पन्न होने लगता है, उसी अवस्था का नाम 'योग' है। साधारणतः जुड़ना, मिलना, एक दूसरे के साथ सम्बन्ध बनाना योग कहा गया है।

महामुनि महर्षि पतंजलि महाराज ने योग दर्शन के सूत्र दो में योग के बारे में कहा है–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः॥

अर्थात् चित्तवृत्तिओं के रोकने को योग कहते है। मनुष्य में चित्तवृत्तियाँ अगणित है, जो पल–पल बनती और बिगड़ती रहती हैं। मनुष्य का मन चंचल होता है। कभी भी स्थिर नहीं रहता। मन की चंचलता दूर करने के लिए योग साधना की आवश्यकता होती है।

नाविरतो दुश्चारितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात॥

अर्थात् जो मनुष्य पापों से निवृत नहीं हुआ है अथवा जो केवल इन्द्रिय परायण है एव जो असमाहित है या एकाग्रतारहित है, चंचलचित्त है – वह कभी आत्मा को प्राप्त नहीं कर सकता अथवा जो व्यक्ति अशान्त चित्त वाला, फल भोग कामनाओं में आसक्त मन वाला है, वह केवल विचार के द्वारा आत्मा को नहीं प्राप्त कर सकता।

आत्मा की प्राप्ति के बारे में कहा गया है–

एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्रयया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥

समस्त भूतों के अन्दर आत्मा चैतन्य रूप से रहती है। यह सबके सामने प्रत्यक्ष नहीं होती। परंतु सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा ध्यानी साधक उसे देख पाते हैं।

आत्म दर्शन के बारे में कहा गया है–

यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरमिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।।

जिस अवस्था में पाँचों ज्ञानेन्द्रियां मन के साथ स्थिर रहती है अर्थात् इन्द्रियां बाहर की सांसारिकता त्याग कर एवं अन्तर्मुखी हो जाती है तथा बुद्धि भी चंचल नहीं रहती, मनुष्य की उसी अवस्था को 'योग' कहते हैं। योग मन की शान्त स्थिर अवस्था है। योग कोई खिलौना नहीं है और न ही कोई खेल। आजकल जनमानस में योग का प्रचुर प्रयोग होने लगा है। जो भी थोड़ी बहुत उठक, बैठक करने लगता है कहता है योग कर रहा हूँ। किसी को कोई शरीर में तकलीफ हो तो मिलने वाला मनुष्य उसे कहेगा, योग किया करो, सब ठीक हो जायेगा। थोड़े आसन, व्यायाम अथवा प्राणायाम कर लेने मात्र को ही योग करने की संज्ञा देने लगते हैं। कहने का भाव है कि साधारणतः लोग 'योग' को समझते ही नहीं हैं। योग तो ध्यान क्रिया से आरम्भ होता है। व्यायाम आसन तथा प्राणायाम करने मात्र को योग नही कहा जा सकता। हाँ ये क्रियायें करने से योग साधना करने में सुगमता हो सकती है।

योग साधना सदैव दो या दो से अधिक आत्माओं के मध्य होती है। योग साधनाओं के द्वारा साधक परमात्मा के साथ समता पाने का इच्छुक रहता है। जो शक्तियाँ मनुष्य मात्र में प्रायः नहीं हुआ करती , उन्हें योग साधक परम पिता परमात्मा से प्राप्त करना चाहता है जिसके लिए परम सत्य मार्ग केवल योग ही है। योग अमर विद्या है जो साधक के साथ जन्मजन्मान्तर तक रहा करती है। जिस प्रकार कर्म संस्कार भोग जन्म के साथ जाते हैं ठीक उसी प्रकार अमर विद्या 'योग' भी जन्म के साथ जाती है। इसीलिए इसे अमर विद्या कहा गया है।

आजकल लोग 'योग' को 'योगा' कहने लगे हैं। जो किसी तरह से ठीक नहीं है। योगा निरर्थक शब्द है। अंग्रेजी पढ़े लोग प्रायः अपनी ही मात्र भाषा का अपमान करने लगे हैं। यही कारण है, हिन्दी का ज्ञान लोगों में कम होता जा रहा है। हिन्दुस्तान भले ही स्वतन्त्र हो गया है पर यहाँ के रहने वाले गुलामी की जंजीरों में पूरी तरह से जकड़े हुए हैं।

अष्टाङ्ग योग

योग की सिद्धि कैसे की जाय तथा कौन–कौन से साधन अपना कर सीढ़ी दर सीढ़ी चढ़कर योग करके 'योगी' बन सके। उसे महर्षि पतंजलि जी ने आठ भागों में बाँट रखा है। उन आठ भागों को 'अष्टाङ्ग योग' के नाम से जाना जाता है।

यमनियमासन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान समाधियोऽष्टावङ्गानि

(पतंजलि योग दर्शन, 29 सूत्र)

अर्थात् यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ये योग के आठ सोपान (अंग) हैं।

योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षयेज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः।। (28)

योग के आठ अंगों का पालन करने से चित्त के मल का नाश हो जाता है। योगी का ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता रहता है। मन शान्त, शुद्ध विकार रहित हो जाता है। आत्मा शुद्ध, विकार रहित तथा अहंकार रहित हो जाती है। अतः प्राणी को योग के आठों अंगों का आचरण श्रद्धापूर्वक करना चाहिए। संक्षेप में योग के आठों अंगों का वर्णन निम्न प्रकार है–

(1) यम

अहिंसा सत्या स्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह – ये पाँच यम कहे जाते हैं।

1. अहिंसा – मन, वाणी और शरीर से किसी प्राणी को कभी भी थोड़ा भी दुःख नहीं पहुँचाना, अहिंसा कहलाता है। परदोष न निकालना भी अहिंसा कहलाता है।

2. सत्य– इन्द्रिय और मन से प्रत्यक्ष देखकर, सुनकर या अनुमान करके जैसा भी अनुभव किया हो, ठीक वैसा ही भाव प्रकट करने को सत्य कहा जाता है। छल कपट रहित व्यवहार इसी श्रेणी में आता है।

3. अस्तेय – मन, वाणी का अपहरण, किसी भी प्रकार की चोरी न करना अस्तेय कहा जाता है। सरकार के टैक्स की चोरी, घूसखोरी आदि सब न करना अस्तेय कहलाते हैं।

4. ब्रह्मचर्य – मन, वाणी और शरीर से होने वाले सब प्रकार के मैथुनों का अभाव ब्रह्मचर्य कहलाता है। वीर्य की रक्षा सर्वोपरि है। अपनी जनेन्द्रियों पर नियन्त्रण रखना ही ब्रह्मचर्य है। जो ब्रह्म का आचरण करे वही ब्रह्मचारी है। वीर्य धारण करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है।

स्मरणं कीर्तनं केलिः, प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च, क्रियानिष्पत्तिरेव च।।

पुरुषों को स्त्रियों के तथा स्त्रियों को पुरुषों के दर्शन करना, स्पर्श करना, स्मरण करना, उनके बारे में सोचना, बातें करना, साथ खेलना, कीर्तन करना, उनका चिन्तन करना, उनके लिए प्रयत्न करना तथा सम्भोग करना ये आठ प्रकार के मैथुन होते हैं।

5. अपरिग्रह – अपने स्वार्थ के लिए धन, सम्पत्ति तथा भोग सामग्रियों का संचयन करना 'परिग्रह' होता है। परिग्रह का अभाव ही अपरिग्रह कहलाता है।

(2) नियम

शौचसंतोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्राणिधानानि नियमाः।। (पातंजलि योगदर्शन 2/32)

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्राणिधान ये पाँच प्रकार के नियम होते हैं। जिनका पालन करना नियम कहलाता है।

1. शौच– शौच दो प्रकार का होता है। बाहर का तथा अन्दर का। मिट्टी, साबुन से

शरीर साफ रखना बाहरी शौच कहलाता है। जप, तप तथा शुद्ध आचरणों का पालन करना अन्दर का शौच कहलाता है। राग द्वेषों की निवृत्ति आन्तरिक शौच कही गयी है।

2. संतोष – आपके पास जो भी उपलब्ध है उसी से निर्वहन करना संतोष कहा जाता है। कर्तव्य कर्मों का पालन, प्रारब्ध पर विश्वास करना ही संतोष है। संतोष में बड़ा सुख छिपा होता है। संतोष सबसे बड़ा धन कहा गया है। यथा–

संतोष : परम् सुखं। संतोष : परम् धनं।।

गजधन, गोधन, वाजिधन और रतन सब खान।

जब आवे संतोष धन, सब धन धूरि समान।।

3. तप– द्वन्द सहन करना, भूख–प्यास, ठंड–गर्मी, दिन–रात, सूखा–वर्षा, सुख–दुःख इत्यादि सहन करना ही तप कहलाता है। तप करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। इन्द्रियों में सूक्ष्म वस्तुओं को दूर देश में देखने सुनने की योग्यता प्राप्त होने लगती है। यथा–

कायेन्द्रियसिद्धरशुद्धिक्षयात्तपस:।। (पा.यो.द. 2/43)

4. स्वाध्याय– स्वाध्याय से अपने इष्टों के दर्शन लाभ होते हैं। यथा–

स्वाध्यायादिष्टदेवता सम्प्रयोग:।। (पा.यो.द. 2/44)

मंत्र जप, भजन, पूजन, धार्मिक पुस्तकों का पठन–पाठन, वेदों का अध्ययन, स्वाध्याय कहलाता है।

5. ईश्वर प्राणिधान– शरीर, मन, बुद्धि, वाणी, इन्द्रियों तथा स्वभाव से किये गये धार्मिक कर्म ईश्वर प्राणिधान कहे जाते हैं। इससे समाधिलाभ मिलता है। यथा–

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणीधानात्।। (पा.यो.द. 2/45)

(3) आसन

स्थिरसुखमासनम् (पा.यो.द. 2/46)

अचल भाव से सुखपूर्वक बैठने को आसन कहते हैं। जब प्राणी शान्त भाव से अपने पैर मोड़कर आराम से कुछ समय बैठता है, उसे आसन कहा जाता है। हर प्राणी के बैठने का ढंग अपना–अपना अलग होता है। उनके बैठने के ढंग को आसन कहते हैं। मनुष्य प्राय: सुखासन, पद्मासन, वज्रासन, सिद्धासन तथा शीर्षासन में बैठता है। सर्प प्राय: कुण्डली मार कर बैठता है, उसे कुण्डलासन, भुजंगासन आदि कहा जाता है।

(4) प्राणायाम

तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेद: प्राणायाम:।। (पा.यो.द. 2/49)

आसन सिद्धि होने पर श्वास–प्रश्वास की गति के रोकने या विच्छेद करने को प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम के पूरक, कुम्भक तथा रेचन तीन चरण होते हैं। प्राणायाम साधक से चित्त का मल आवरण धुल जाता है तथा मन और वाणी को निर्मल बनाता है।

साधक के पाप क्षीण हो जाते हैं। विषय–विकार दूर हो जाते हैं।

(5) प्रत्याहार

स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्वरूपा नुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहार:।।(पा.यो.द. 2/54)

अर्थात् इन्द्रियां जो स्वभाव से चाहती हैं उनके प्रतिकूल आचरण करना ही प्रत्याहार कहलाता है। इन्द्रियों को रोकने वाला केवल चित्त ही होता है। चित्त के रुकते ही इन्द्रियों की कार्य प्रणाली रुक जाया करती है। दृढ़ इच्छा शक्ति वाला प्राणी चित्त विजयी बन जाता है। उपर्युक्त पाँचों साधन बहिरंग कहे जाते हैं।

(6) धारणा

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा।। (पा.यो.द. 3/1)

नाभिचक्र, नासाग्र, हृदयकमल आदि स्थानों या चक्रों में ध्यान करना, अपने चित्त को लम्बे समय तक लक्ष्य पर लगाना तथा एकाग्र करना ही धारणा है। भगवान अथवा अपने इष्टदेव, सद्गुरुदेव के पावन चरणों से लेकर शरीर के प्रत्येक अंग पर चित्त स्थिर रखना ही धारणा है। ध्येय लक्ष्य पर ध्यान करना ही धारणा होती है। ध्यान से पूर्व साधक को मन बनाना पड़ता है कि अमुक–अमुक पर ध्यान करना है, उसे ही धारणा कहा जायेगा।

(7) ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्।। (पा.यो.द. 3/2)

जिस ध्येय वस्तु में चित्त (मन) को स्थिर रूप से लगाया जाय तथा उसी में चित्त एकाग्र हो जाय तथा और कुछ भी न देखा जाय उसे ध्यान कहा जाता है। ध्येय वस्तु के अतिरिक्त अन्य कुछ भी न देखना ही ध्यान की अवस्था होती है। धारणा तथा ध्यान में यही अन्तर है कि धारणा भिन्न–भिन्न देश में होती है परंतु ध्यान अखण्ड तेल धारा के समान होता है। अत: ध्येय वस्तु पर लगातार ध्यान टिक जाता है।

(8) समाधि

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधि:।। (पा.यो.द. 3/3)

ध्यान में जब केवल मात्र ध्येय मात्र की ही प्रतीति रहती है और चित्त का निज स्वरूप शून्यता में चला जाता है ऐसे ध्यान को समाधि कहते हैं। ध्यान जब काफी समय तक रहता है उसे समाधि कहा जाता है। ध्यान का अभ्यास बढ़ने पर जब ध्यान, धाता और ध्येय जब तीनों एकागार होकर ध्येय रूप में प्रतीत होने लगें तो ध्यान की उसी अवस्था का नाम 'योग समाधि' होता है। समाधि का परम लाभ कैवल्य प्राप्त करना होता है।

हमारे पूर्वजों ने योग की उपादेयता के कारण, योग प्राप्ति के साधनों के आधार पर योग को कई प्रकार का बना रखा है। अत: योग कई प्रकार का होता है।

प्राण क्या है?

प्रेषक : रघुबीरचन्द ठाकुर, पुजिया नं. 3 खटीना, उत्तराखण्ड

सृष्टि व व्यष्टि प्राण : प्राण समस्त प्राणियों के भीतर जीवनी शक्ति है। ईश्वरीय प्राण या विश्वव्यापी प्राण को समष्टि प्राण कहते हैं। उसी समष्टि प्राण का ही क्षुद्र अंश प्राण तरंग बनकर प्राणियों में व्याप्त है, उसे व्यष्टि प्राण कहते हैं, जो शारीरिक और मानसिक शक्तियों के रूप में प्राणियों में व्याप्त है तथा शरीर यंत्र को चलाता है। इस विश्व ब्रह्माण्ड में जितनी भी किसी प्रकार की ऊर्जा एवं शक्तियाँ है सब मिलकर प्राण की ही अभिव्यक्ति हैं, जैसे तापीय शक्ति, विद्युतीय, चुम्बकीय, ध्वनीय, प्रकाशकीय, गुरुत्वाकर्षण आदि सभी शक्तियाँ और ऊर्जायें।

उपनिषद का कथन : प्राण के विषय में प्रश्नोपनिषद में ऋषि कबन्धी द्वारा पूछे गये प्रथम प्रश्न के उत्तर में महर्षि पिप्पलाद इस तरह मर्म को समझाते हैं।

तस्मै स होवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः

सतपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमत्पादयते।

रयिं च प्राणं चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति।।4।।

प्राण व रयि की उत्पत्ति : महर्षि पिप्पलाद बोले– हे कात्यायन यह बात वेदों में प्रसिद्ध है कि सम्पूर्ण जीवों के स्वामी परमेश्वर को सृष्टि के आदि में जब प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा हुई, तब उन्होंने संकल्प किया। तप से उन्होंने सर्व प्रथम रयि और प्राण – इन दोनों का एक जोड़ा सृष्टि उत्पन्न करने हेतु पैदा किया। समष्टि जीवनी शक्ति प्रदान करने वाली का नाम प्राण तथा पदार्थों में जीवन स्थिति सामन्जस्य के लिए मूल समुदाय नाम रयि दिया, प्राण चेतना है रयि शक्ति आकृति है। उन दोनों के संयोग से सृष्टि के सभी कार्य सम्पन्न होते हैं।

प्राण का सूर्य चन्द से सम्बन्ध : सूर्य जीवनी शक्ति का घनीभूत स्वरूप है और चन्द्रमा रयि स्थूल तत्वों को पुष्ट करने वाली यह दोनों शक्तियाँ प्राणियों के अंग प्रत्यंग में व्याप्त हैं। जीवनी शक्ति का सम्बन्ध सूर्य से है और माँस मेद आदि का सम्बन्ध चन्द्रमा से है। सूर्य की किरणें प्राणों में नई स्फूर्ति देती हैं। अतः सूर्य ही प्राणों का प्राण है तथा प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान उन पाँच रूपों में सूर्य का ही अंश है।

प्राण का आश्रय : सृष्टि क्रम में पंच तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध से ही क्रमशः शब्द से स्थूल आकाश, स्पर्श से वायु, रूप से अग्नि, रस से जल, गन्ध से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। समस्त स्थूल रूपों का आधार आकाश है, बिना आकाश के कोई पदार्थ निर्मित हो ही नहीं

सकते। 5 ज्ञानेन्द्रिय और 5 कर्मेन्द्रिय अन्तःकरण चतुष्टय का आश्रय प्राण है, प्राण का आश्रय आत्मा है।

प्राण के कार्य

1. सृष्टि उत्पत्ति में : प्राण के अनन्त कार्य है। प्राण ही संतान रूप में जन्म लेता है। प्राण ही देवताओं के लिए हवि पहुंचाता है। प्राण ही इन्द्र के रूप में है। प्राण ही प्रलयकाल से संहार करने वाला रुद्र है, वही विचरने वाली वायु है। प्राण ही अग्नि, चन्द्र, तारे ज्योतिर्गणों का स्वामी सूर्य है, प्राण ही मेघ बनकर वर्षा करता है। प्राण ही जीवन निर्वाह के लिए अन्न उत्पन्न करता है।

2. मुख्य प्राण बनकर : प्राण ही मुख्य प्राण बनकर अन्य चार वायु उदान, अपान, व्यान, समान पर नियन्त्रण करके शरीर के विभिन्न पृथक-पृथक स्थानों में पृथक-पृथक कार्य करता है। प्राण निकलने पर मृत्यु हो जाती है। अतः प्राण ही आयु है, प्राण ही जीवन है।

3. स्थूल शरीर में : प्राण ही स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण शरीरों में कार्य करता है। एक शरीर से दूसरे शरीर में स्थानान्तरण का कार्य भी किसी न किसी प्राण के माध्यम से होता है। जिव्हा के माध्यम से होने वाला जप स्थूल शरीर का जप कहा जाता है और यह भी प्राण से ही होता है।

4. सूक्ष्म शरीर में : प्राण ही सूक्ष्म शरीर की एक – एक नस नाड़ी माँस मज्जा अस्थि रहित के एक-एक अणु परमाणु को प्राणमय बनाता है। प्राण के द्वारा ही कण्ठ में होने वाला जप दूसरा शरीर, उसको सूक्ष्म शरीर का जप भी कहा जाता है। अंगुष्ठ मात्र, स्वप्नावस्था, शब्द स्पर्श रूप, रस, गंध से अन्तर ज्ञान होता है। प्राण ही सूक्ष्म शरीर के नस-नाड़ी, माँस अस्थि रहित वाष्प तत्व तथा 19 सूक्ष्म भावों को भी चेतना प्रदान करता है।

5. कारण शरीर में : प्राण उसी तरह कारण शरीर जो 19 सूक्ष्म और 16 स्थूल के सूक्ष्म भावों (35 तत्वों) से निर्मित ईश्वरीय विचार कणिकाओं से बना है, को भी चेतन बनाये रखता है। प्राण से ही हृदय में होने वाला अति तीव्र जप कारण शरीर का जप कहा गया है तथा स्पन्दन बढ़ जाने पर नाभि स्थान होकर यह महा कारण बन जाता है। यही पश्यन्ती जप बन जाता है।

6. प्राण की अति चेतन अवस्था ही समाधि : अन्तर जगत की समस्त शक्तियाँ जब अपनी मूल अवस्था में पहुँचती है, उसी का नाम प्राण है। प्राण के द्वारा ही मन उच्चतम भूमि में विचरण करता है, जो अति चेतन भूमि है उसी को समाधि कहते है।

योग युक्तो भवार्जुन:

कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

योगेश्वर भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेशित करते हुए कहा – हे अर्जुन सभी कालों में योग युक्त होकर कार्य करो। ऐसा मात्र अर्जुन के ही प्रति नहीं, बल्कि समूची मनुष्य जाति के प्रति ये वाक्य ग्रहणीय है। क्योंकि मात्र योगी ही सब कुछ जानकर परम स्थान को प्राप्त कर लेता है।

गीता में भगवान ने कहा –

वेदेषु यज्ञेषु तप: सु चैव,
दानेषु यत्पुण्यफलंप्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा,
योगी परं स्थानमुपैतिचाद्यम्।

अर्थात् योगी योग के रहस्य को तत्व से जानकर वेदों के पढ़ने, यज्ञ, तप, दान आदि कार्यों के करने मात्र से पुण्य प्राप्त होगा। लेकिन योगी इन सबका उल्लंघन करके सनातन पद को प्राप्त कर लेता है।

तात्पर्य यह है कि अन्य सभी सत्कर्म मनुष्य के पुण्य की वृद्धि करते हैं। किंतु जीवन की रहस्यमयी गुत्थी को नहीं जान पाते हैं। जीवन एक कार्यशाला तथा उसका प्रयोग योग है। योग को इसी कार्यशाला के माध्यम से जाना जा सकता है। देव लोक से देवता भी पुण्य के क्षीण होने पर मृत्यु लोक रूपी कार्यशाला में कार्य करके पुन: अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। यदि व्यक्ति ध्रुव आदि तमाम साधकों की तरह से अटल निश्चय करके कार्य करे तो उसे अवश्य ही लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है। इसको भौतिक जगत की सफलता से जोड़कर देखना युक्तियुक्त होगा। जैसे जिस व्यक्ति ने जीवन में बड़े स्वप्नों को अर्थात् बड़े पद को प्राप्त करना होता है। वह उसी के अनुसार अध्ययन में लग जाता है। जिससे उसे निश्चय ही सफलता प्राप्त हो जाती है। अध्यात्म के चरम लक्ष्य को भी व्यक्ति उसी प्रकार कठिन साधन एवं सद्‌गुरु के उपदेश के अनुसार कार्य करते हुए अलभ्य वस्तु प्राप्त कर सकता है। सिद्धगुफा से संबंधित साधक को सद्‌गुरु की कृपा से योग सिद्धियों का अनुभव गुरु के शक्तिपात से जान पाया है।

भगवान ने अर्जुन को युद्ध के लिए अनेक प्रकार से प्रेरित करने का स्वाभाविक प्रयास किया। इस प्रयास में साधारण जीवों के कल्याण की भी बातें सरल रूप से अर्जुन के द्वारा उठायी गयी हैं। यह प्रश्न अध्यात्म पक्ष के लौकिक एवं व्यवहारिक प्रश्न भी उठते चले गये हैं। अर्जुन ने पूछा ब्रह्म क्या है? अध्यात्म क्या है? कर्म क्या है? अधिभूत और अधियज्ञ क्या है? यह

सब किस प्रकार इस शरीर में निवास करता है। सभी प्रश्नों का क्रमश: उत्तर देते हुए भगवान ने कहा जो कभी नाश को प्राप्त करता वह ब्रह्म है। यह शरीर नाशवान है। सृष्टि नाशवान है। किंतु ब्रह्म नाशवान नहीं है। अध्यात्म के बारे में बताया कि यह जीवात्मा ही अध्यात्म है। शरीर के विभिन्न अंग इसी अध्यात्म शक्ति से संचालित होता है। आँख देखता है, कान सुनता है। सारे अंग स्वाभाविक रूप से संचालित हैं। पुण्य के जितने कार्य किये जाते हैं, सब कर्म की श्रेणी में आते हैं। जैसे दान देना, पूजा–पाठ, सद्ग्रंथों का अध्ययन करना, सद्शास्त्रों का श्रवण करना तद्रूप आचरण करना ही कर्म कहलायेगा। कार्य का तात्पर्य भी सद्कर्मों से ही है। जिससे पुण्य मात्र का ही संचय हो। जितने पदार्थ इस शरीर में हैं अथवा सृष्टि जगत में है सब नाशवान हैं। चन्द्र, सूर्य, तारे, शरीर प्रकृति आदि सबका नाश होना निश्चित है। पुनः ईश्वर की कृपा से इनकी उत्पत्ति भी होती है। यही अधिभूत की श्रेणी में आता है। जीव में विद्यमान ईश्वर का अंश जो वाणी रूप से विद्यमान है, वह ईश्वर का तेज ही अधियज्ञ कहलाता है। मनुष्य को यह ज्ञान है कि वह ईश्वर का ही अंश है। इसीलिए उसे उस ईश्वर से जोड़ने का प्रयास करना चाहिए। यद्यपि व्यक्ति के कर्म बाधक बनते हैं। लेकिन दृढ़ प्रतिज्ञ व्यक्ति जो इस शरीर को मात्र ईश्वर के लिए ही बना है। इसलिए हमें ऐसा ही कर्म करना चाहिए, जिससे उसकी कृपाबनी रहे। उदाहरण स्वरूप जैसे पुत्र पिता से सम्पत्ति को प्राप्त करने का अधिकारी होता है। लेकिन यदि वह पिता के प्रति यथोचित कर्म नहीं करता है, तो वह सम्पत्ति पिता किसी और को स्थानान्तरित कर देता है। लेकिन जो समर्पित भाव से पिता के साथ रहता है। वह पिता के सर्वस्व सम्पत्ति का अधिकारी बन जाता है। यही बात आध्यात्म में है। यद्यपि कुछ बातें अध्यात्म की स्वाभाविक रूप से व्यक्ति को प्राप्त हो जाती हैं। लेकिन वह अज्ञानतावस समझ नही पाता है। गीता में भगवान ने कहा है कि –

प्रयाण काले मन साचलेन।
भक्त्या युक्तो योग बलेन चैव।।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणभावेश्य सम्यक्।
सतं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।

पुनः कहा –

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः।।

अर्थात् हे अर्जुन जो पुरुष मुझमें अनन्य मन को लगाकर सदा मेरा ही चिन्तन करता है, उसके चिन्तन के फलस्वरूप मैं उस साधक को सहज ही सुलभ हो जाता हूँ। उनका पुनः पुनर्जन्म भी नहीं होता है। ईश्वर के चिन्तन के बारे में भगवान पतंजलि ने लिखा – 'तत्जपद्अर्थभावनम्' अर्थात् ईश्वर का चिन्तन उसके स्वरूप का भी स्मरण भी आवश्यक होता है। इसके विपरीत जो आचरण करता है, वह बार–बार जन्म मरण के चक्कर में फंसा

रहता है।

यद्यपि समस्त सृष्टि यहाँ तक कि ब्रह्मा आदि भी एक काल के आने पर सब उसी परमात्मा में विलीन हो जाते हैं। पुन: उसी परमात्मा की इच्छन् क्रिया के फलस्वरूप सृष्टि का सृजन करते है। यह बच्चों की क्रीड़ा की तरह है।

योगेश्वर भगवान ने अर्जुन को उपदेशित करते हुए निष्कर्ष रूप से यह भी बताया कि जगत में मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति दो मार्गो से जाता है। एक देवयान मार्ग जो शुक्ल मार्ग के नाम से जाना जाता है। दूसरा पितृयान मार्ग अर्थात् कृष्णमार्ग। इसमें जो देवयान काल में मृत्यु को प्राप्त होता है। वह बड़भागी योगी ही होता है। क्योंकि वह परमधाम को प्राप्त कर जाता है। दूसरा जो पितृयान काल में मृत्यु को प्राप्त करता है। ऐसे सामान्य जन होते हैं जो जन्म मृत्यु के चक्र से गुजरते रहते हैं। मृत्यु के यही दो मार्ग है। इसलिए व्यक्ति को मोहित नहीं होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को योग युक्त होकर निष्कामता को प्राप्त करें। यह कामनाओं में न फंसे। क्योंकि कामनाएँ शान्त होने वाली नहीं होती हैं। इसलिए अर्जुन तुम योगी बनो। वर्तमान में तुम्हारे समक्ष युद्ध रूपी कर्म उपस्थित है। इसे भी निष्काम भाव से करो। इसमें किसी प्रकार का मोह नहीं होना चाहिए। क्योंकि यह युद्ध रूपी कर्म स्वत: उपस्थित हो गया है। इसलिए कर्त्तव्य बुद्धि से युद्ध करने की आवश्यकता है। प्रत्येक व्यक्ति को भी इसी प्रकार उपस्थित कर्म को कर्त्तव्य बुद्धि से करने की आवश्यकता होती है। इससे भी निष्कामता का भाव उत्पन्न होता है।

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

झूमती हैं दुनिया तेरे दर पे आके,
बताओ गुरुवर वो कौन फल खाके।
बताओ गुरुवर........

1. बंदगी होती क्या, मेरे दिल से पूछो,
याद में रोये तेरी, मेरी मुहब्बत,
लज्जत आशिकी का, न तुमसे छुपा है,
पर दुनिया का, नजर है कयामत।
जिंदगी खराब क्यों ? तुझको भी पाके,
बताओ गुरुवर.........

2. दूर तुमसे रहने, का गम सताये,
भूल नहीं पाऊं, इसमें तेरी रजा है,
ये जो परदा दिखे, प्रभु आँखों में मेरी,
यही मेरे कर्मो का, मतलब सजा है।
खाओ तरस हमपे, यहां अब लाके,
बताओ गुरुवर..........

3. दौर-ए-बेखुदी से, न सामने तू आते,
मेरी हाल मगर ये, मुझे सलामत,
सर झुका है जबसे, उठा मैं न पाया,
मेरी जुनून यही है, तेरी इबादत।
जो मिट जाए 'राजेश' तेरे पास जाके
बताओ गुरुवर.........

– राजेश कुमार सिंह, बलिया

योग में चंचल मन का व्यवधान

(समीक्षात्मक टिप्पणी)

डॉ. जयनारायण राय, आजमगढ़

श्रीमद्भगवद्गीता के अध्याय 6 में श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन को ध्यानयोग की विशद् व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि जो सिद्धयोगी अपने समान ही सर्वत्र बराबर देखता है चाहे सुख हो चाहे दुख, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है। इस पर श्री अर्जुन ने श्रीकृष्ण भगवान के प्रति मन की चंचलता पर प्रश्न किया कि :

योऽयं योगस्त्वया, प्रोक्त: साम्येन मधुसूदन।

एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वास्थितिंस्थिराम्।। 6/33।।

चंचल हि मन : कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।

तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।। 6/34।।

पिछले श्लोकों में श्री कृष्ण भगवान ने योगी के समत्वभाव का वर्णन किया। उसे सुनकर अर्जुन को कोई प्रेरणा नही मिली। सम्भवत: श्री कृष्ण भगवान ने सोचा था कि अर्जुन साम्य – स्थिति का वर्णन सुनकर उत्साहित होगा और उसे प्राप्त करने की इच्छा उसमें जन्म लेगी। पर वैसा नहीं होता। अर्जुन को लगता है कि मन के चंचल रहते ऐसी स्थिति कैसे मिल सकती है। जिस समत्वयोग की बात श्रीकृष्ण भगवान कह रहे हैं, वह तो मन से ही सम्बन्धित है। मन यदि शान्त होता, तो समत्वयोग की साधना सध सकती है, पर जब मन ही अशान्त बना हुआ है, तब आपने समत्व के रूप में जिस योग का प्रतिपादन किया है, वह कैसे सधेगा।' अर्जुन अपने कथन की पुष्टि में 34वें श्लोक में मन के चार विशेषण लगाते हैं–

1. चंचल, 2. मन्थनशील, 3. बलवान 4. हठी

अर्जुन की बात को श्री कृष्ण भगवान काटते नहीं हैं, अपितु एक प्रकार से उसका समर्थन ही करते हैं, किंतु साथ ही साथ यह भी कहते है कि ऐसे दुर्दान्त मन को भी अपने अधिकार में लेने का यह उपाय है–

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।। 6/35।।

श्रीकृष्ण भगवान के शिक्षा देने की प्रणाली मनोवैज्ञानिक है। श्रीकृष्ण भगवान अर्जुन के शंकाओं को काटते नहीं है और कहते है कि हां अर्जुन! मन चंचल और कठिनाई से वश में होने वाला है किंतु इसे अभ्यास से और वैराग्य के द्वारा पकड़ा जा सकता है। उपरोक्त श्लोक के उत्तरार्ध में आया 'तु' शब्द महत्वपूर्ण है। इसका उच्चारण करके श्री कृष्ण भगवान अर्जुन के

मन को अपनी ओर खींच लेते है, अपनी बात सुनने के लिए अर्जुन के मन को उन्मुख कर देते है, जब अर्जुन देखते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान ने उसकी समस्या को समस्या के ही रूप में स्वीकार किया है, तो उसका मानसिक तनाव शिथिल होता है और वह पूरे मनोयोग के साथ जो श्रीकृष्ण भगवान कहते है, वे उसे सुनते हैं। यहां पर 'महाबाहो, का सम्बोधन भी अर्थपूर्ण है। श्री कृष्ण भगवान् अर्जुन को स्मरण करा देते हैं कि तुम तो महावीर हो, तुमने अपने पराक्रम से किरात–वेशधारी शंकर जी को सन्तुष्ट किया है, तुममें मन का संयम भी अपार है, फिर भी तुम मन के सामने घुटने टेकने की बात कर रहे हो? हिम्मत मत हारो तात! अभ्यास और वैराग्य का अवलम्बन करो।

अभ्यास में बड़ी शक्ति है। कठिन से कठिन काम भी अभ्यास से आसान हो जाता है। 'योग वशिष्ठ, में एक श्लोक आता है– 'जन्मकोटि चिराभ्यस्ता राम संसार वासना'' – यह संसार की वासना करोड़ों जन्म के अभ्यास से पुष्ट हुई है। अतएव यदि इसे निर्मूल करना है, तो उसके लिए वैसा अभ्यास भी चिरकाल तक करना पड़ेगा। मुनि पतंजलि भी अपने 'योग सूत्र, में चित्त की चंचलता को दूर करने का उपाय बताते हुए कहते हैं–

'अभ्यास वैराग्याभ्यां तन्निरोधः' (1/12)

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य के द्वारा उन (चित्तवृत्तियों) का निरोध होता है।

अभ्यास क्या है?

तत्र स्थिती यत्नोऽभ्यासः।। (1/13)

उन चित्तवृत्तियों को स्थिति में रखने के लिए अर्थात् पूरी तरह अपने वश में रखने के लिए जो सतत प्रयत्न है, उसे ही अभ्यास कहते हैं।

क्या कुछ दिन के अभ्यास से उद्देश्य सिद्ध हो जायेगा?

नहीं **'स तु दीर्घ काल नैरन्तर्य सत्कार सेवितो दृढभूमिः।'** (1/14)

दीर्घकाल तक परम श्रद्धा के साथ सतत् चेष्टा करने से तब कहीं वह अभ्यास दृढमूल होता है। अभ्यास में निरन्तरता और श्रद्धा दोनों आवश्यक हैं। श्रद्धा न हो तो अभ्यास उबाऊ हो जायेगा और उसकी निरन्तरता खण्डित हो जायेगी और यदि अभ्यास में निरन्तरता न हो तो मात्र अभ्यास के प्रति श्रद्धा हमारे मन के बद्धमूल संस्कारों को नष्ट करने में समर्थ नहीं होगी। अतएव अभ्यास में इन दोनों गुणों का होना अनिवार्य है। पतंजलि मुनि आगे कहते हैं कि अभ्यास की मात्रा पर सिद्धि की मात्रा निर्भर करती है – 'मृदुमध्यमाधिमात्रत्वात् ततोऽपि विशेषः।(1/22)– अभ्यास हल्का हो तो सिद्धि की मात्रा हल्की होती है। यदि अभ्यास तगड़ा हो तो उसी मात्रा में साधक को सिद्धि प्राप्त होती है। अभ्यास मध्यम मात्रा में रहे तो सिद्धि प्राप्त होने की गति भी माध्यम होती है।

अभ्यास और वैराग्य परस्पर पूरक इस आधार पर हैं कि अकेले अभ्यास से काम नहीं

बन सकता है, उसके साथ ही साधक में वैराग्य भी होना आवश्यक है। वैराग्य का अर्थ 'विगत राग' – राग अर्थात् आसक्ति विगत की, भूतकाल की बात हो गयी, फलतः द्वेष भी भूतकाल की वस्तु हो गयी। संसार में अब किसी के लिए न पक्षपात रहा न जलन। यही वैराग्य है। महर्षि पतंजलि वैराग्य की परिभाषा देते हुए कहते हैं–

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम् ।।1/15

अर्थात् देखे और सुने हुए विषयों के प्रति तृष्णा का सर्वथा त्याग कर देने के बाद साधक में जो एक अपूर्व मानसिक वृत्ति जन्म लेती है, जिससे वह समस्त विषय वासनाओं का दमन करने में समर्थ होता है, उसे 'वैराग्य' कहते हैं।

विषयों में दोष–दर्शन करने सम्बन्धी अवधारणा के विषय में आचार्य शंकर कहते हैं कि देखे गये तथा नहीं देखे गये प्रिय भोगों में बारम्बार दोष–दर्शन का अभ्यास करते से जो उनके प्रति अरुचि या वितृष्णा जन्म लेती है, उसे वैराग्य कहते हैं। उस वैराग्य के द्वारा चित्त की विक्षेप रूप जो चंचलता है, उसे रोका जा सकता है. चित्त की किसी एक भूमि में एक समान वृत्ति की बारम्बार आवृत्ति करना 'अभ्यास' कहलाता है। इसी प्रकार महर्षि पतंजलि जी वैराग्य का अवलम्बन करके दोष देखने का सतत अभ्यास 'भोगों के परिणाम दुख, ताप दुःख और संस्कार दुख के माध्यम से किये जाने की बात कहते हैं।'

योग में चंचल मन का व्यवधान सम्बन्ध समीक्षात्मक टिप्पणी प्रस्तुत करते हुए योग–प्राप्ति के लिए तीन बातें आवश्यक हैं – 1. मन वश में हो (वश्यात्मना) 2. साधक यत्नशील हो (यतता) 3. योग प्राप्ति के लिए समुचित, शास्त्र सम्मत उपाय होना चाहिए (उपायत)। इसी से श्री कृष्ण भगवान कहते हैं – जिनका मन अपने वश में नहीं है, उसके द्वारा योग दुष्प्राप्य है, परंतु जिसका मन वश में है, ऐसे यत्नशील पुरुष के द्वारा उपाय करने पर यह योग प्राप्त होना सहज है।

स्थिरता निर्विकल्प समाधी है तथा एकाग्रता सविकल्प समाधी है। सविकल्प का तात्पर्य है कि उस अवधि में आवश्यक विचारों का मन क्षेत्र में अपना काम करते रहना। मन की स्थिरता सर्वथा भिन्न बात है। उसे एकाग्रता से मिलती जुलती स्थिति तो कहा जा सकता है, किन्तु दोनों का सीधा सम्बन्ध नहीं है। जिसका मन स्थिर हो उसे एकाग्रता का लाभ मिल सके अथवा जिसे एकाग्रता सिद्ध है उसे स्थिरता प्राप्त हो जाये, यह आवश्यक नहीं।

आश्रम समाचार

आनंदकंद महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज का 123 वाँ प्राकट्य दिवस इस साल बड़ी धूम–धाम से सिद्धगुफा सवाई धाम आगरा में मनाया गया। यूं तो जन्म दिवस चैत्र शुक्ल नवमी को मनाया जाता है परन्तु शुक्ल सप्तमी, अष्टमी और नवमी तीन दिनों तक यहाँ भक्त प्रवचनों तथा कीर्तन का आनंद लेते हैं। दिनांक 10, 11, 12 अप्रैल 2011 तदनुसार रविवार, सोमवार और मंगलवार को भक्त समुदाय उक्त कार्यक्रम में बढ़ चढ़कर भाग लिए। चूंकि इस साल गुफा का भी शताब्दि समारोह था इसलिए भक्तों की संख्या में वृद्धि होना लाजमी था।

सुबह 4 बजे मंगला आरती के बाद भगवत् गीता का दो अध्याय का पाठ प्रत्येक दिन आश्रम में होता है। फिर सभी ब्रह्मचारी लगभग एक घण्टे के लिए ध्यान में बैठ जाते हैं तदोपरान्त सभी योगासन करते हैं। सप्तमी, अष्टमी और नवमी को सामूहिक आरती दिन में सुबह साढ़े नौ बजे होती है। सप्तमी, अष्टमी को सामूहिक आरती के बाद गुरुगीता का पाठ होता है। इस वर्ष गुरुगीता पाठ के बाद दूर–दूर से आये विद्वान गुरुभक्तों ने गुरुकृपालीलाओं के साथ–साथ पातंजल योग सूत्र, गुरुगीता तथा भगवत् गीता को आधार बनाकर हम सभी गुरुभक्तों को जीवन जीने की कला बताये। मुख्य वक्ताओं में आचार्य डॉ. दासलाल शर्मा जी, डॉ. वीरेन्द ब्रह्मचारी जी, डॉ. विजय सिंह जी, डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी जी, श्री चन्द्रकिशोर दुबे जी, श्री सोमदत्त शर्मा जी तथा श्री रामकुमार गोस्वामी जी थे।

अष्टमी के शाम को जीवन तत्व साधन, षट्कर्मों, नेति, धौति, कुंजल, कपाल भाति तथा विभिन्न प्रकार के आसन व्यायाम का प्रदर्शन ब्रह्मचारी योगेन्द्रजी, महावीर जी तथा राजेश जी ने किये। हठयोग की क्रियाओं का प्रदर्शन ब्रह्मचारी राजकुमार जी ने किया। प्राणायाम की शक्ति क्या होती है प्रत्यक्ष सभी गुरुभाई बहन देखे। ऋषिकेश से आचार्य पूर्णचन्द शर्मा तथा दिल्ली से वेदराम शास्त्री पधारे।

प्रत्येक रात्रि को भक्तजन जागरण करते थे तथा प्रभु लीलाओं को सुनते और सुनाते थे। चलते–फिरते उठते–बैठते भारत के कोने–कोने से आये श्रद्धालु प्रभु कीर्तन, गुरुदेव जय–जय, सद्गुरु जय जय, अखण्ड ज्योति प्रभु रामलाल जय जय करते रहते थे। लगभग सभी के जुबा से यही सुनाई देता था कि यहाँ आने पर मेरी मनोकामनाएँ पूर्ण होती है अर्थात् प्रभुजी, गुरुजी का आशीर्वाद सभी को प्राप्त होता है।

सद्गुरु कृपालीला प्रसंग

जगदीश राए बंसल

योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवांई धाम से सम्बन्धित 58 वर्षीय हमारे एक परम आदरणीय गुरु भाई जी का नाम श्री रघुवीर शरण भारद्वाज है। इनकी धर्मपत्नि का नाम श्रीमती विमलेश भारद्वाज है। इनके इकलौते पुत्र प्रिय नरेन्द्र भारद्वाज सहित दो सुपुत्रियाँ मन्जु और मृदुला हैं। दोनों सुपुत्रियाँ विवाहित हैं। श्री रघुवीर शरण भारद्वाज सरकारी सेवा में कार्यरत थे और सन् 2000 में पशु चिकित्सक के पद से सेवा निवृत्त हुए हैं। गुरु भक्ति से ओत प्रोत इस दम्पति को सन् 1985 में गुरु दीक्षा ग्रहण करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। मूल रूप से डॉ. साहिब का निवास स्थान उत्तर प्रदेश में जिला अलीगढ़ के अन्तर्गत खैर में है। खैर को तहसील का दर्जा प्राप्त है। वर्तमान में डॉ. साहिब लम्बे समय से सवांई आश्रम में रह रहे हैं और आश्रम में नव निर्मित आधुनिक सरोवर, मुख्य द्वार एवं चार दिवारी पत्थर आदि के निर्माण सेवा कार्य में मन कर्म और वचन से समर्पित हैं।

वैसे तो अपने भाग्य विधाता गुरु देव जी महाराज प्राणी मात्र के लिए अकारण दयालु हैं। मगर अपने दीक्षित बच्चों को तो कभी छोड़ते ही नहीं। एक भजन में आता है

आप दुखियों के कष्ट मिटाते हैं।
दुख लेकर सुख पहुँचाते हैं।।
दर्शन एक बार जो पा जाते हैं।
वो दिल ही आपको दे जाते हैं।।

आशुतोष, संकट मोचन, परम करुणा सागर गुरुदेव जी महाराज की लीलाओं को एवं अखण्ड शक्ति चमत्कारों को कोई भी गुरु भाई बहिन नहीं जान सकता। चराचर के स्वामी किसी को पुष्प प्रसाद देकर, किसी को श्री सिद्ध गुफा की रज देकर, किसी पर आरती जल डाल कर, किसी को दृष्टी मात्र से और किसी – किसी को स्पर्श मात्र से निहाल कर देते हैं। एक ऐसा ही कृपा प्रसंग डाक्टर साहिब ने दिनांक एक मार्च 2010 अर्थात् शुभ होली त्यौहार के अगले दिन फाग होली बधाई एवं तिलकोत्सव के पश्चात् सवांई धाम आश्रम में सुनाया जो उन्हीं के शब्द भावों में लिखने का प्रयास किया जा रहा है। डॉ. जी ने बतलाया कि :

मेरी छोटी सुपुत्री मृदुला की शादी सन् 1984 में बड़ी धूम–धाम से चांचपुर (हाथरस) की थी। श्रावण मास में पड़ने वाले त्यौहारों के उपलक्ष्य में मृदुला हमारे पास खैर आई हुई थी तो एक दिन मृदुला को तेज बुखार ने घेर लिया। मैंने अपने स्तर पर अच्छी–अच्छी दवाईयां दी

मगर आराम के स्थान पर बुखार बढ़ता ही चला गया। इस प्रकार तीन दिन निकल गए। अब मैंने अपनी दवाईयाँ बन्द कर दी क्योंकि साधारण बुखार होता तो तुरन्त आराम हो जाता। मगर यह टाईफाइड बुखार प्रतीत होता है अत: कल किसी अच्छे चिकित्सक से इलाज शुरु कर वाएगें।

अगले दिन प्रात: काल मृदुला ने बतलाया कि रात को नींद में मुझे अन्तर्यामी गुरुदेव महाराज जी के दर्शन हुए और सवाई धाम एवं श्री सिद्धगुफा के दर्शन होते रहे। आज मैं सवाई धाम जाना चाहती हूँ। माँ बेटी दोनों में सहमति बन गई कि सवाई जरूर जाना है। फिर घर वालों ने मुझसे आग्रह किया कि आज आप सवाई धाम चले। मैंने अपनी विवशता से अवगत कराते हुए कहा कि मैं कैसे चल सकता हूँ? आजकल मवेशियों में बीमारी फैली हुई है। भादों मास का महिना है। मेरा चलना सम्भव नहीं है। इस प्रकार पक्ष और विपक्ष में कई बातें होती रहीं। अन्तत: निर्णय हुआ कि यह मृदुला की बीमारी का प्रश्न है और गुरु भगवान के प्रति आस्था बनी हुई है अत: किसी न किसी तरह समय निकालना ही पड़ेगा। परिणामत: हम सवाई धाम पहुँच गए।

काल चक्र, युग चक्र और जग चक्र को एक साथ चलाने वाले अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक परम करूणा निकेतन गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज अपने आसन पर विराजमान थे। हमारे प्रणाम करने से पहले ही घट-घट पल-पल की जानने वाले त्रिलोकी नाथ कह उठे कि अच्छा आ गए लल्ला? हम प्रणाम करके श्री चरणों में बैठ गए। अन्तर्यामी जी ने मृदुला को अपने हाथों में ले लिया। बड़े लाड़, प्यार, दुलार करते-करते कहने लगे कि लल्ली तूने अपने पिता जी को क्यों तकलीफ दी? मवेशियों में बीमारी है, भादों का महिना है।'' इस प्रकार कहते-कहते मृदुला के दोनों हाथ पकड़ कर अपने श्री मुख पर लगवाते, कभी अपनी दाढ़ी पर लगवाते, कभी मृदुला के मुख पर सहलाते .... आदि।' इस प्रकार बहुत देर तक मृदुला को रिझाते, हँसते-हँसाते खेल करते रहे। मैं स्वयं में चकित था कि जो-जो विवशता मैंने घर कही थी, सर्व समर्थ्य चराचर के स्वामी गुरुदेव महाराज जी ने ज्यों की त्यों कह दी। मृदुला का बुखार तो कभी का रफू चक्कर हो चुका था। कुछ समय पश्चात् हम गुरु देव भगवान से आज्ञा लेकर घर के लिए चल पड़े। मार्ग में एत्मादपुर के बस अड्डे पर मृदुला ने खूब गोलगप्पे खाए। कोई गड़बड़ नहीं हुई।

इस प्रकार श्री सिद्ध शिरोमणी त्र्यलोकपावन स्वयं नारायण गुरुदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज ने स्पर्श मात्र से मृदुला को स्वस्थ्य एवं निरोग बनाकर निहाल कर दिया। ऐसे श्री सद्‌गुरु देव के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

भक्ति भक्तस्य जीवनम्

ब्रह्मसिंह गुर्जर, वरिष्ठ अधिवक्ता

भक्ति क्या है? भज धातु क्तिन् प्रत्यय के द्वारा 'भक्ति' शब्द निष्पन्न हुआ है। ''भक्ति सा परानुरक्ति ईश्वरे'' ईश्वर जहां आँखों के सामने है– ईश्वर भाव को सामने रखकर जो चलना, जो बढ़ना – उसी को कहते हैं – भक्ति।

ज्ञान और कर्म भक्ति के सहायक हैं। विषयों का आत्म स्वीकरण ही ज्ञान है। आत्म ज्ञान का, आन्तरिक ज्ञान से, ही साधक समझ जाते हैं। साधक द्वारा बैठकर साधना करना भी कर्म है, जनसेवा करते रहना भी कर्म होता है। ''कर्म ब्रह्मेति कर्म बहु कुर्वति'' कर्म को ब्रह्म समझकर अधिक से अधिक कर्म करो। तब कर्म का परिणाम भक्ति होगा। अर्थात् ज्ञान चर्चा करने के बाद जो कर्म करते हैं उसकी फलश्रुति ही यही है भक्ति। इसलिए ज्ञान के बादकर्म, कर्म के बाद भक्ति। भक्ति में सात्विकी भक्ति, निर्गुणा भक्ति, अहैतुके भक्ति, तामसी भक्ति, राजसी भक्ति होती है। परंतु जिस भक्ति के द्वारा भक्त को आनन्द मिलने के बजाय भक्त के यह भावना रहे कि परमात्मा मैं चाहता हूं कि मेरे प्रेम से, मेरे भजना से, मेरी भक्ति से तुझे आनन्द मिले। मैं आनन्द नहीं चाहता, जनसेवा भी इसी प्रकार की भक्ति है। दुनियां की सेवा करेंगे तो परोक्ष रूप से परमात्मा की सेवा ही करेंगे। दुनियां की हर सत्ता परमात्मा की सन्तान है।

Each and every object of this Universe
is the progeny of the Supreme Progerctor.

सद्गुरु की कृपा द्वारा परमात्मा के निकट पहुँचने का रास्ता ही सरल है। ऐसा संयोग गुरु कृपा से, श्रद्धा के रथ पर आरूढ़ होकर ही आस्था के द्वार तक पहुँचना संभव है। श्रद्धा और आस्था का समन्वित रूप ही भक्ति के भाव में प्रकट होता है। भक्ति मन की अहम् रहित वह तरंग है जिसमें – आराध्य के अतिरिक्त कुछ भी प्रतिबिंबित नहीं होता। अनुकूलता, प्रतिकूलता से विमुख तरंग दर्पण की तरह धवल और निश्छलता से पूर्ण होती है। श्रद्धा के उत्प्रेरक प्रिय या आराध्य के गुण होते हैं। ये गुण ही आस्था और विश्वास के जन्मदाता होते हैं। हम समाज और परिवार में जिस व्यक्ति के प्रति श्रद्धा रखते हैं उसके प्रति भाव और आचरण में विनम्र होते हैं। यह विनम्रता हमारे अन्दर उसके प्रति चिंतन मात्र से शान्ति का विस्तार करती है। श्रद्धा होती भी उसके प्रति है जो हमसे गुण और ज्ञान में श्रेष्ठ होता है। अतः हम सदैव अपने से श्रेष्ठ व्यक्तियों के सम्पर्क में रहने का प्रयत्न करें। हमारे शास्त्र और महापुरुष इसलिए स्वाध्याय और सत्संग पर जोर देते हैं। स्वाध्याय से ज्ञान बढ़ता है और सत्संग से पुष्ट होता है। शास्त्र दुर्गुणों

से दूर रहने की सलाह देते हैं और उनसे बचने का मार्ग भी बताते हैं। साधु पुरुषों के आचरण में शास्त्र का क्रियात्मक रूप हमें देखने को मिलता है। इसलिए .... सठ सुधरहि सतसंगत पाई..............

इससे हमारे मन में शास्त्रों के प्रति आस्था उत्पन्न होती है। सामान्य अर्थों में परोपकारी किसी विषय विशेष का मर्मज्ञ या सदाचारी व्यक्ति जो हमारा हितैषी होता है वही हमारी श्रद्धा का पात्र होता है। उसके प्रति जो हमारा भाव होता है, वह लौकिक प्रेम को जन्म देता है। किंतु यही श्रद्धा जब किसी तपस्वी, त्यागी और द्वेष रहित व्यक्ति के लिए हमारे मन में जन्मती है, तो वह भक्ति कहलाती है।

प्रथम भक्ति संत कर संगा ..... परमात्मा के प्रति जब श्रद्धा उमड़ती है, तो उसमें आस्था और विश्वास समरस हो उठते हैं। यह अनन्य भक्ति ही श्रद्धालु को भक्त की संज्ञा प्रदान करने में समर्थ है। भक्त होना उतना ही कठिन है जितना भगवान होना। वस्त्र और वेष से स्वरूप तो प्रतिभासित होता है परंतु शास्त्र तो उस कर्मयोगी को ही सन्यासी मानते हैं। जो ईर्ष्यारहित तथा आकांक्षा शून्य है। आकांक्षा से तात्पर्य संसार की वस्तुओं की कामना से है। वह भी किसी से न कुछ पाने की अपेक्षा करता है और न किसी से ईर्ष्याभाव ही रखता है। यही कारण है कि जिन्हें यह स्थिति प्राप्त हो जाती है वे संन्यासी ही सामाजिक लोगों के बीच ब्रह्म के विग्रह के प्रतीक के रूप में पूजे जाते हैं।

इसलिए यह सत्य ही है–

गुरु गोविन्द दोनो खड़े, काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविन्द दिया बताय।।

अच्छे और बुरे का द्वन्द्व अज्ञान से ही उत्पन्न होता है। द्वन्द्व-बद्ध अज्ञानाच्छादित आत्मा, भले एवं बुरे दोनों के चुंगल में फँसा रहता है। वह स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत एवं मानसिक जगत के भले और बुरे की इच्छा करता है। अतः उस अपरिच्छिन्न अवस्था में नहीं पहुँच पाता, जो जीवन के अनन्त एवं परिवर्तन रहित पार्श्व में प्राप्तव्य है। अतः द्वैत के सीमा क्षेत्र के परे अनन्त की खोज करनी चाहिये।

सद्गुरु-कृपा से वी.आई.पी. व्यवस्था में कामाख्या जी का दर्शन

डॉ. विजय सिंह

सृष्टि सृजन के आरम्भ में जिनसे सारे महाभूत प्रकट होकर हमारे प्रतीति के विषय होते हैं, स्थिति काल में जिनमें ये सब स्थित होते हैं और प्रलयकाल में जिनमें लीन होते हैं, उन सत्यस्वरूप सद्गुरु को सभी बार-बार नमस्कार करते है।

यतः सर्वाणि भूतानी प्रतिभान्ति स्थितानि च।
यत्रेवोपशाम यान्ति तस्मै सत्यात्मने नमः॥

तीर्थों, शक्ति पीठों, धामों, ज्योतिर्लिंगों के दर्शन से पुण्य लाभ होता है। पुण्यों के प्रबल होने पर व्यक्ति में मुमुक्षा जाग्रत होती है, तब यथार्थ को जानने की जिज्ञासा की विकलता होने पर सद्गुरु प्राप्त होते हैं। सद्गुरु कृपा से साधक अन्तर जगत में प्रवेश कर चित्ताकाश एवं चिदाकाश का परिचय पाता है। ऐसे साधकों को बाह्य मन्दिरों-तीर्थों का सेवन आवश्यक नहीं होता। ये तो अपने घट मन्दिर में ही सम्प्रज्ञात समाधि द्वारा सर्व तीर्थों का सेवन करते रहते हैं। उन्हें बाह्य भटकाव की आवश्यकता नहीं होती।

गोहाटी आये मुझे तीन-चार दिन व्यतीत हो चुका था। परंतु माँ कामाख्या मंदिर जाने का उत्साह भंग हो गया, यह सुनकर कि पाँच-पाँच घण्टे अत्यन्त प्रातः में जाकर लाइन लगाने के बाद दर्शन हो पाता है।

घण्टों लाइन में खड़े रहने की मानसिकता एवं शारीरिक क्षमता मुझमें नहीं थी। मैंने सोचा जो मेरे उपयुक्त होगा वह स्वयं श्री गुरुदेव जी नियोजित करेंगे। एक दिन गणेश गुड़ी कुछ गृह उपयोगी सामान खरीदने गया। वहाँ मूलतः देवरिया गोरखपुर के एक बड़े व्यापारी से परिचय हुआ उन्होंने पूछा आपने माँ का दर्शन किया? मैंने उपरोक्त कठिनाइयों का विवरण उन्हें दिया। वे उत्साह से बोले मैं रविवार को अपनी गाड़ी से आपके स्थान से तीन बजे आपको लेकर मंदिर चलेंगे और वी.आई.पी. द्वार से दर्शन करायेंगे। आपको कष्ट नहीं होगा। श्री गुरुदेव की ऐसी अलौकिक सहायता से पूर्ण सुविधा के साथ माँ कामाख्या का दर्शन हुआ। यहाँ आज भी वाम-मार्गी तंत्र साधकों का बोलबाला है। मंदिर के गर्भ गृह एवं बाहर भी उत्कीर्ण मूर्तियाँ इसकी प्रमाणिकता सिद्ध करती हैं। **'श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः'** जिसकी जैसी श्रद्धा है वह वैसा ही है। पञ्च मकारों की साधना से प्रकृति की विकृत रूपता से प्राप्त शक्तियाँ सामान्यतः साधकों को निम्न योनियों में ढकेल देती हैं। इस हेतु परम प्रभुजी तीर्थों के बहाने कालीखोह में होने वाले नर-बली की प्रथा को बन्द करवाये। तन्त्रों की उपासना

वाराणसी के भैरवी चक्र को स्तम्भित कर उन्हें प्रताड़ित कर सद्मार्ग का उपदेश दिया। इसी सन्दर्भ में कदाचित आसाम वन–प्रान्तर में अत्यन्त कठिन यात्रा करके तान्त्रिकों–गणकों के प्रभाव को समाप्त किये थे।

चतुर्दिक पहाड़ हरितमामय वृक्षों–लतावल्लरियों से ढंकी गरिमा–मय जीवन्तता को प्रखरता से सब ओर बिखेर कर हमें मंत्रमुग्ध कर रही है। प्रकृत की मनोरम झांकी शुद्ध ब्रह्म रूप प्रभु के चिदविलास को बाहर से अन्तर जगत में बलात प्रवेश करा रही है। बन्द आँखों में भी बाहर के रंगबिरंगे वृक्षों के पुष्प गुच्छ उभर कर दृश्य रूप स्थिर हो जाते। तब श्री सद्गुरु कृपा का भान जगता। गोस्वामी तुलसी दास जी का स्वानुभूत सत्य सामने प्रगट होकर कानों में वैखर वाणी सुनाई पड़ता।

यथा सुअंजन अंज दृग साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं शैल–बन भूतल भूरि निधान।।

नूतन सुरम्य प्रकृति के विराट वितान में पल–पल हो रहे परिवर्तनों से भला हम कब तक बेखबर रहते। प्रकृत की बाह्य सात्विकता भी अनिर्वचनीय आनन्द का आभास सामान्यतः सतो प्रधान व्यक्तियों को कराती है। कुछ ही क्षण के लिए ही सही शान्ति, प्रार्थना मय मनोभाव का जागरण अन्तःकरण को पवित्र करने वाला होता है। इस विराट वैभव के सामने अपने जीवत्व का अहंकार छुद्र से छुद्रतमता को प्राप्त हो जाता है।

ज्यों गुंगहि मीठे फल को रस उर अन्तर ही भावै।
मन वाणी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै।।

(सूरदास)

उमानन्दा

गोहाटी के फांसी बाजार (फैंसी बाजार) से लगा पान बाजार है, वहीं से फेरी (स्टीमर) द्वारा यात्रा करते हुए ब्रह्म नंद में डूबे पहाड़ियों की श्रृंखला जिनमें कुछेक जल से ऊपर निकले हुए दिखाई देते हैं, उन्हीं में एक बड़ा दो तीन किलोमीटर के परिधि वाला ऊंचा पहाड़ उमानन्दा खड़ा है। यह पहाड़ी चतुर्दिक ब्रह्मपुत्र के लोहित जल से घिरा एक टापू है। भांति–भांति के वृक्षों से अटा–पटा है। वृक्षों पर आच्छादित मालती आदि भिन्न प्रकार की पुष्प लतायें घेर कर कहीं–कहीं सुरम्य कुंज प्राकृतिक रूप से निर्मित किये हुए हैं। पर्वत के शीर्ष भाग पर एक बड़ा हाल निर्मित है उसके पृष्ठ भाग में भगवान शिव का विशाल प्रस्तर लिंग विद्यमान है। अब पिकनिक स्पाट के रूप में गोहाटी वासी एवं पर्यटक यहाँ आकर मनोरम दृश्य को चित्रांकित करते हैं।

ऐसे ही एक कुंज की छाया में प्रस्तर खण्ड पर बैठा सुनहरे बालों वाले लंगूरों के किल्लोल कर्म को देख रहा था। अनेक प्रकार के रंग–बिरंगे पक्षी छोटे से छोटे बड़े से बड़े

मयूर तक कभी–कभा दृष्टि पथ में आते जाते थे। ईश्वर की इन महिमा मयी सृष्टि की विविधता, मनोरंजकता, एकान्तिक रहस्यमयता से अभीभूत हुआ बैठा था कि तभी एक गौरवर्ण जटाजूट धारी काले वस्त्र धारण किया हुआ महात्मा वय चालीस के लगभग मेरे पास आकर खड़ा हुआ और पूछा– श्रीमान् क्या यहाँ मैं बैठूं तो आपको कोई आपत्ति तो नहीं होगा। मैंने सिर हिलाकर स्वीकृति ज्ञापन किया।

थोड़ी देर आपसी परिचय में व्यतीत हुआ। वह शक्ति उपासक के रूप में अपना परिचय दिया। मैंने पूछा वाम मार्ग अथवा दक्षिण–मार्ग। वह हँसा और बोला– यह शक्ति–पीठ भोगी के द्वारा प्रकृति जयता प्राप्त करने हेतु तांत्रिकों में प्रसिद्ध है। मैंने वितृष्ण भाव से कहा– स्वेच्छाचार और जल्द से जल्द समस्त शक्तियों के प्रभाव से निर्दोष लोगों को ठग कर सुख–साधन उपलब्ध करना ही आपके तंत्र का उद्देश्य है। क्यों? यही न। वह उग्र भाव धारण कर बोला– जो बात की तुम्हें जानकारी नहीं है। जिस मार्ग का अभ्यास नहीं किये हो, उसके बारे में इतने अधिकार पूर्वक अनर्गल बातें कहना आप जैसे पढ़े लिखे को शोभा नहीं देता। मैंने सहज हास्य के साथ उस तांत्रिक से कहा–समाज का पंच मकारों की साधना से क्या लाभ होगा? व्यभिचारी, मद्यपी, मांसाहारी यदि तुम्हारे मत को मान कर सारा समाज हो जाये, तो समाज की समूची व्यवस्था चरमरा नहीं जायेगी। सत्प्रवृत्तियों के द्वारा ही मन की एकाग्रता से प्रकृति एवं पुरुष का ज्ञान होता है। तुम्हारी परम्परा तो सारे सामाजिक भावनात्मक सम्बन्धों को समाप्त कर देगा। पशु–पक्षियों की तरह अवैचारिक भोग मानव समाज को भी नीचे धकेल कर गर्त में गिरा देगा।

वह मदमत्त अट्टहास करके बोला– बड़े दुःसाहसी हो, दण्डित भी हो सकते हो। मैं उन करुणार्णव श्री सद्गुरु जी के चरण कमलों का ध्यान कर कठोरता से बोला– ढोंग पाखण्ड द्वारा भोले भाले अबोधों को ठगने के सिवाय तुम जैसों के पास है ही क्या? तुम सभी लोकायतवादी तंत्र–मंत्र के नाम पर प्रछन्न रूप से चार्वाक के ही पद चिन्हों पर चलने वाले हो। वह तांत्रिक बोला चार्वाक तो नास्तिक था। मैं नास्तिक नहीं हूँ मैं तो माँ की उपासना करता हूँ।

मैंने उसकी बातों का पुरजोर खण्डन करते हुए कहा– माँ का स्नेह एवं ईश्वरीय कृपा शक्ति एक है। माँ ईश सत्ता की शक्ति है। शिव शक्ति में अभेद है। "**कुपुत्रो जायते क्वचिदपि माता कुमाता न भवति।**" भाई मेरे आप जैसे कुपुत्रों के भोग लिप्सा जनित प्रयासों पर भी माँ कृपा करती है। परंतु निश्चित ही यह आसुरी प्रवृत्तियों को जन्म देकर पथभ्रष्ट कर भयानक योनियों में जाने का मार्ग खोल देती है।

वह अत्यन्त क्रोधित हुआ बड़बड़ाता उठकर जिधर से आया था उधर ही चल पड़ा। बार–बार लाल नेत्रों से उलट–उलट कर मुझे देखता रहा। मैं अपने मन की शांति हेतु मंत्र जाप एवं श्री सद्गुरु चरण चिंतन में लग गया।

श्री गुरुदेव की जादूगिरी

प्रेषक : केशव देव उपाध्याय, वाराणसी

वैसे तो हमारे आपके आराध्यदेव योगिराज श्री गुरुदेव जी महाराज का इस धराधाम पर आने का प्रयोजन ही जीव उद्धार है, परंतु कभी–कभी वे ऐसा लीला चरित्र कर देते हैं कि वह कृपा मानस पटल पर पत्थर की लकीर जैसा अमिट प्रभावशाली बन जाती है। तीर्थराज प्रयाग (इलाहाबाद माघ मेला) में यदा–कदा जाने वाले हमारे गुरुभाई–बहन, जिन्होंने कैम्प कार्यालय, योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्धगुफा सवांई शिविर में अल्पकाल के लिए भी निवास किया है, वे हमारे गुरुभाई श्री चन्द्रवली दूबे जी से अवश्य ही परिचित होंगे एवं उन्हें जानते होंगे ऐसा विश्वास है। श्री चन्द्रवली दूबे जी, इलाहाबाद जनपद मुख्यालय से मात्र सत्ताइस–अट्ठाइस किलोमीटर दूर, इलाहाबाद–वाराणसी रोड पर ग्राम व पोस्ट आशेपुर के निवासी हैं। पूर्ण रूपेण सात्विक ब्राह्मण की दिनचर्या का पालन करने वाले श्री दूबे जी ने सन् उन्नीस सौ चौरासी में, श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र सवांई (आगरा) शिविर कार्यालय माघ मेला कैम्प प्रयाग (इलाहाबाद) में श्री आराध्यदेव जी के स्थूल दर्शन किये एवं श्री चरणों में प्रणाम निवेदित किया। शिविर कार्यालय या यों कहा जाय कि अपने माघमेला आश्रम वातावरण इन्हें बहुत ही आनन्ददायक लगा एवं परम आदरणीय गुरुभाई श्री दशरथ तिवारी जी के साथ इन्होंने आश्रम (माघ मेला शिविर) में खूब श्रद्धा एवं लगन से सेवा भी की। इस यात्रा में श्री चन्द्रवली दूबे जी करीब दो दिन तक बिना खाये ही रहे।

तीसरे दिन, आरती–पूजा, गीता पाठ–गीता प्रवचन की समाप्ति के बाद, जब आराध्यदेव अपने करकमलों द्वारा हमारे भाई–बहनों को नाश्ता वितरित कर रहे थे तो सबसे अन्त में भाई श्री दुबे जी नाश्ता लेने पहुँचे। नाश्ता देने के पश्चात् मधुर मुस्कान के साथ प्रश्न किया कि लल्ला! हमें ऐसी सूचना मिली है कि तुम भोजन यहाँ का नहीं करते। इन्होंने बड़े ही विनीत भाव से कहा कि महाराज जी! मैं बिल्कुल शुद्ध ब्राह्मण हूँ एवं हमारे घर पर भी स्त्रियाँ केवल एक वस्त्र धारण कर खाना बनाती हैं एवं हम लोग एक वस्त्र धारण कर खाना खाते हैं। यहाँ मैं देखता हूँ कि सभी लोग भोजनालय में आ–जा रहे हैं, अतः मैं यहाँ आश्रम का भोजन ग्रहण करना अपनी समझ से उचित नहीं समझता। उनकी सभी बातों को सप्रेम सुनने के बाद, श्री गुरुदेव भगवान ने अपना वरद हस्त उनके दोनों कन्धों पर रखा एवं कहा कि लल्ला! यह भगवान जगरनाथ का दरबार है। यहाँ का भोजन, श्री प्रभुजी को भोग लगने के बाद पवित्रतम् हो जाता है। तुम आश्रम का भोजन लिया करो एवं भोजनालय की ही सेवा में रहा करो। आराध्यदेव की आज्ञा स्वीकार कर, उस दिन से आश्रम के भोजनालय का प्रसाद लेना आरम्भ कर दिया। इसी वर्ष भाई जी ने सपत्नीक योग दीक्षा श्री गुरुदेव द्वारा प्राप्त की। इनकी

धर्मपरायणा धर्मपत्नी का नाम श्रीमती मनोरमा दूबे है, साथ ही प्रयाग माघ मेला में दोनों प्राणी (पति–पत्नी) आश्रम की खूब लगन एवं श्रद्धा से सेवा करते हैं।

इस दम्पति की तीन सन्तानों में पहली पुत्री, दूसरा पुत्र तथा तीसरी पुत्री है। उनके नाम क्रमशः प्रतिमा, नृपेन्द्र और विद्योत्तमा हैं। इनकी पहली बच्ची कुमारी प्रतिभा की बोली जन्मजात तुतलाहट की थी। सन् उन्नीस सौ अट्ठासी में कुमारी प्रतिभा की उम्र लगभग ग्यारह वर्ष की थी एवं यह कक्षा चार की विद्यार्थी थी। इसकी तुतलाहट युक्त आवाज से इसके माता–पिता सदैव चिन्तित रहा करते थे कि इसकी शादी कैसे होगी। इनकी पारिवारिक परम्परा के अनुसार लड़के–लड़कियों की शादी कम उम्र में ही कर दी जाती है। इन्होंने भी अपनी बच्ची की शादी हेतु लड़का देखना आरम्भ किया एवं एक–दो जगह देखा भी। एक जगह के लड़के वालों ने लड़की देखने का प्रस्ताव रखा। यह शादी की बात नवम्बर में हुई थी, जिसमें लड़के वाले ने लड़की देखने का प्रस्ताव रखा। श्री चन्द्रवली दूबे जी ने कहा कि प्रयाग माघ मेला में तो आप लोग अपने परिवार के साथ आते ही हैं। मैं पूरे एक महिने अपने आराध्यदेव श्री गुरुदेव के माघ मेला शिविर प्रयाग में पूरे परिवार के साथ रहता हूँ एवं गुरु आश्रम की जो भी सेवा बनती है, करता रहता हूँ, अतः आपको जब भी आना हो, श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवाई (आगरा) माघ मेला शिविर कैम्प, जो श्री रामानुज मार्ग पर स्थित है कभी भी आकर देख सकते हैं। लड़के वालों ने कहा कि इसी बहाने दोनों कार्य हो जायेंगे। साथ ही यह बात पक्की हो गयी कि माघ मेला के दिनों में किसी भी दिन लड़के वाले आकर लड़की को देख लेंगे। सन् उन्नीस सौ अट्ठासी अमावस्या के दिन लड़के पक्ष के चार पुरुष एवं पाँच लड़कियाँ और औरतें श्री चदवली दूबे जी को पूछते हुए, माघ मेला शिविर कैम्प में प्रवेश किये। वैसे अमावस्या के दिन शिविर में तीर्थ यात्रियों की काफी भीड़ बढ़ जाती है एवं कार्यकर्त्ता बहुत ही व्यस्त रहा करते हैं और यही हाल हमारे आदरणीय सेवक गुरुभाई श्री चन्द्रवली दूबे जी की थी। उचित अभिवादन के बाद उन लोगों ने लड़की को बुलाने को कहा। भाई श्री दूबे जी बड़े असमंजस में पड़े। करते ही क्या, लड़की को बुलाना बाध्यता थी।

उस समय आराध्यदेव श्री गुरुदेव कुटिया के बाहर तख्त पर अर्ध पद्मासन की मुद्रा में विराजमान थे। इन्होंने मन ही मन श्री गुरुदेव भगवान के चरण कमलों को प्रणाम किया एवं हमारी एक गुरुबहन से अपनी बच्ची को बुलवाया। जब बच्ची कुमारी प्रतिभा आ गयी, तो लड़के पक्ष की पाँच की संख्या में आयी औरतें एवं बच्चियाँ उसको लेकर एक छोलदारी में, जिसे श्री दूबे जी ने बतलाया तथा जो उस समय खाली थी (उसमें निवास करने वाले या तो संगम स्नान करने या पवित्र मेला क्षेत्र देखने गये थे) लेकर चली गयीं एवं प्रश्नों की बौछार आरम्भ कर दी।

आश्चर्य! महान आश्चर्य! जिन्दगी में पहली बार कुमारी प्रतिमा ने सभी के प्रश्नों का

खड़ी बोली में सटीक उत्तर दिया एवं बोली में तनिक भी तुतलापन नहीं था। उन सबों ने सभी प्रकार के व्यंजन बनाने एवं भोजनालय से सम्बन्धित कई और भी प्रश्न पूछे एवं सबका कुमारी प्रतिभा ने खड़ी भाषा में उत्तर दिया एवं उस समय उसकी तुतलाहट पता नहीं कहा चली गयी थी। करीब एक–डेढ़ घण्टे बाद, वे सब बाहर निकलीं, कुमारी प्रतिभा अपने परिवार वाले कैम्प में चली गयी एवं उन औरतों ने अपने साथ आये पुरुषों से कहा कि परिवार में किसी की बहु इतनी योग्य नहीं है। लड़के वालों ने कहा कि आपकी लड़की हमें बहुत ही पसन्द है, हम शादी आपकी बच्ची से करेंगे। इतना कहकर और आश्रम का कुछ प्रसाद लेकर वे सब चले गये। श्री दूबे जी, जब आश्रम की सेवा से खाली होकर, अपने कैम्प में गये एवं अपनी पत्नी से पूछा कि कौन–कौन सा प्रश्न उन सबों ने पूछा एवं तुमने क्या उत्तर दिया? उसकी माँ कुछ बोले, उसके पहले ही बच्ची प्रतिभा ने बतलाया कि गुरुजी की महान कृपा एवं शक्ति है। उन सबों से बात करते समय हमारी तुतलाहट की आवाज समाप्त हो गयी एवं मैं बिलकुल शहरी खड़ी बोली में बोल रही थी। (यद्यपि) इस समय भी वह तुतलाहट की आवाज में बोल रही थी। उसकी आवाज की तुतलाहट मात्र उतने ही समय के लिए बन्द थी, जितने समय वह, लड़के पक्ष की औरतों के साथ थी। श्री गुरुदेव भगवान की यह कृपा सुनकर उनकी आँखों से अश्रु धारा निकल पड़ी एवं भाई दूबे जी का कंठ अवरुद्ध हो गया। महान आश्चर्य तो इस बात का है कि इसके आवाज की तुतलाहट मात्र उतने ही समय के लिए बन्द थी, जितनी देर, यह लड़के पक्ष की औरतों के साथ रही। उनसे अलग होते ही उसकी आवाज का तुतलाना फिर आरम्भ हो गया। अब श्री दूबे जी निश्चिन्त हो गये की शादी पक्की हो गयी।

इस वर्ष अर्थात् अट्ठासी की बसन्त पंचमी के दिन, इसकी होने वाली माँ (सासु) त्रिवेणी स्नान कर करीब पच्चीस औरतों के साथ फिर आराध्यदेव के माघ मेला शिविर कैम्प, श्री दूबे जी को ढूंढने तथा उनकी बच्ची से बात करने पहुँच गयी। श्री चन्द्रबली दूबे जी ने सोचा, फिर आफत आ गयी। दूसरे किसको पुकारते, सिर्फ श्री गुरुदेव ही तो हम लोगों के एक मात्र रक्षक हैं। भाई श्री दूबे जी ने मन ही मन प्रार्थना किया कि महाराज जी! अब इज्जत आप के हाथ में है। श्री गुरुभाई दूबे जी ने उन सबों के कहने पर फिर अपनी बच्ची प्रतिभा को उन सबों के साथ भेज दिया। मौनी अमावस्या का पर्व समाप्त होने के कारण इस बार कई छोलदरिया एवं शिविर खाली थे। अतः वे सब एक बड़ी छोलदारी में बच्ची प्रतिभा को लेकर चली गयीं। उन सबों से प्रश्नों एवं उत्तरों का सिलसिला आरम्भ हो गया। फिर प्रभु कृपा से महान आश्चर्य की घटना घटित हुई। उनके सभी प्रश्नों का सटीक एवं स्पष्ट उत्तर बच्ची प्रतिभा ने बिल्कुल खड़ी बोली में दिया। साथ ही विभिन्न प्रकार के व्यंजनो के बनाने की विधि भी उससे पूछा, जिसे उसने अच्छी प्रकार से बनाने की विधि बतलायी। यह उसके परीक्षा की बड़ी ही विषम परिस्थिति थी। इस बार भी वह इस परीक्षा में सर्वोत्तम निकली। वे सब आपस

में बात कर रही थीं कि ऐसी लड़की तो हमारे परिवार में बहू के रूप में आज तक नहीं आयी है एवं ये सभी बड़े ही प्रसन्न मन से शादी की बात पक्की करके चली गयीं। जब यह शादी पक्की हो गयी। श्री चन्द्रबली दूबे जी ने उन्हें आश्रम की ओर से प्रसाद भी दिलवाया। इसके बाद वे सब चली गयीं, परंतु घटना फिर वही घटित हुई। उन देखने आने वाली महिलाओं के चले जाने के बाद; जब श्री दूबे दम्पत्ति एक साथ हुए एवं उन लोगों ने बच्ची प्रतिभा से हाल–चाल जाना तो उसने फिर तुतली बोली में ही सब बतलाना आरम्भ कर दिया। जब वह तोतली बोली में बोलना आरम्भ की तो श्री दूबे जी ने प्रश्न किया कि बेटी उन लोगों से (देखने आने वाली महिलाओं) भी तुमने तुतली भाषा में ही वार्ता किया तो उसने कहा कि नहीं पिता जी! यही तो श्री गुरुजी की महान कृपा है कि उन सबों के सामने जाते ही हमारी तोतली बोली समाप्त हो जाती है, तथा मैं पता नहीं कैसे खड़ी बोली में, न जानते हुए भी सभी प्रश्नों का खड़ी बोली में उत्तर देने लगती हूँ। जिस वस्तु विशेष की मुझे रंच मात्र भी जानकारी नहीं है उसका खड़ी बोली में मैं कैसे सटीक उत्तर दे देती हूँ एवं वे सभी सन्तुष्ट हो जाती थीं, इस श्री गुरुदेव जी की कृपा से मुझे काफी आश्चर्य हो रहा है। इस समय यह बच्ची प्रतिभा अपने माता–पिता से जो भी बात कर रही थी, सब तुतली भाषा में ही कर रही थी। आराध्यदेव की ऐसी कृपा देख कर श्री दूबे दम्पत्ति की आँखें छल–छला गयी तथा कण्ठ अवरुद्ध हो गया। वैसे तुतली बोली एवं देखने वालों के आने पर खड़ी बोली। यह सब अनहोनी घटना श्री गुरुदेव भगवान, जो सर्व समर्थ पूर्ण योगीराज है की ही अहैतुकी कृपा से सम्भव है। इस बच्ची प्रतिभा की शादी सोलह जून सन् नवासी को हुई। शादी के दिन अपरिचित लोगों से वह खड़ी बोली बोलती थी तथा पारिवारिक लोगों से तुतलाहट भरी आवाज में बात करती थी।

शादी के बाद यह घर पर (मायका) में ही रही, लगभग सात साल तक। जब सातवीं साल आरम्भ हुआ, तब उसके गवने की तारीख निर्धारित हुई। इस बीच लगभग सात साल तक उसकी आवाज तुतली ही बनी रही। गवने में जब वह विदा होकर अपनी ससुराल पहुँची, तब जाकर उसकी तुतलाहट की आवाज समाप्त हो गयी। धन्य है ऐसे सेवक भक्त एवं परात्पर सत्ता है हमारे श्री गुरुदेव भगवान।

श्री चन्द्रबली दूबे जी की दूसरी सन्तान पुत्र हैं तथा उसकी शादी अन्जानवे में हुई है, यह घर गृहस्थी का कार्य भार देखते हैं। इनकी तीसरी संतान भी लड़की ही है तथा इसकी शादी इन्होंने वर्ष सन् उन्नीस सौ सत्तानवे में की है। यह भी अपनी ससुराल में राजी खुशी से है। इस प्रकार आनन्दकन्द श्री गुरुदेव भगवान की करूणा कृपा से, प्रिय भाई श्री दूबे जी का परिवार श्री गुरुदेव भगवान की छत्रछाया में पूर्ण आनन्द के साथ जीवनयापन कर रहा है। अब सर्व समर्थ पूर्ण योगिराज श्री गुरुदेव भगवान के युगल चरण कमलों में साष्टांग प्रणाम के साथ यह कृपा प्रसंग यहीं विश्रामित है।

श्री गीतामृत पदावली

प्रेषक : डॉ. रुद्रदत्त चतुर्वेदी, गोरखपुर

(गतांक से आगे)

भय से रहित, शान्तचित्त होकर, ब्रह्मचर्य-व्रत धारण कर।
मन को रोक, लगाकर मुझमें, ध्यान सदा मेरा ही धर।।14।।

मन को अपने वश में रख, जो सदा योग में रत रहता।
तेरा पद निर्वाण शान्तिमय, ऐसा ही योगी लहता।।15।।

अति भक्षण से योग न सधता अथवा करके नित उपवास।
अधिक जागने-सोने से भी, सम्भव नहीं योग अभ्यास।।16।।

जो जन नियमित खाता-पीता, नियमित कर्मों को करता।
नियमित सोता तथा जागता, योग उसी का दुख हरता।।17।।

नियमित जिसका ध्यान धनंजय ! आत्मा में सुस्थिर रहता।
लिप्सा-रहित सभी कर्मों में, योगी का पद पा लेता।।18।।

वायु-रहित जगह में जैसे, दीप-शिखा न कभी हिलती।
सदा योग में रत योगी की, उपमा उससे है मिलती।।19।।

जहाँ योग के साधन द्वारा, शुद्ध शान्ति मन में आती।
देख स्वयं आत्मा को अर्जुन! तुष्टि वहाँ आत्मा पाती।।20।।

बुद्धिगम्य इन्द्रिय से दुर्गम, जहाँ आन्तरिक सुख मिलता।
जहाँ तत्व में सुस्थिर होकर, नर न कभी उससे हिलता।।21।।

जिसको पा लेने पर अर्जुन! जँचता उत्तम लाभ न और।
गुरुतम दुख भी नहीं डिगाता, होने पर सुस्थिर जिस ठौर।।22।।

दुख-संयोग हटाने वाला, योग नाम उसका जानो।
अविचल मन से लगना उसमें, निश्चय उचित सदा मानो।।23।।

तज करके संकल्प-जनित निज, इच्छाओं को पार्थ! सभी।
पूर्ण रूप से इन्द्रियगण का, मन से करके संयम भी।।24।।

धैर्य-गृहीत बुद्धि के द्वारा, परम शांति को प्राप्त करे।
मन भी आत्मा में सुस्थिर हो, चिन्ता और न क्लेश रहे।।25।।

यह अस्थिर चंचल मन जब-जब, जाना चाहे इधर-उधर।
शीघ्र रोककर इसको अर्जुन! तब ही इसको वश में कर।।26।।

ब्रह्मभूत होकर जो रहता, रज और पाप पंक से दूर।
ऐसा शान्त हृदय योगी ही उत्तम सुख पाता भरपूर।।27।।

योगाभ्यास निरंतर ऐसे, करने वाले योगी लोग।
पाप रहित हो, ब्रह्म प्राप्ति सुख का करते हैं उपभोग।।28।।

जीव-मात्र को अपने भीतर, जो देखे योगी-ध्यानी।
तथा सभी में अपने को भी, लखता समदर्शी ज्ञानी।।29।।

जो मुझको सर्वत्र देखता, मुझमें सबको सभी कहीं।
दूर न मैं उससे रहता हूँ, वह भी मुझसे दूर नहीं।।30।।

मुझ व्यापी को जो भजता, एकत्व-बुद्धि जो है गहता।
किसी भाव में रहकर भी वह, योगी मुझमें ही रहता।।31।।

अपना सुख दुख औरों जैसा होता जिसको एक समान।
है ज्ञानी इस जग में वह ही, सच्चा योगी वही महान।।32।।

अर्जुन उवाच
साम्य-योग जो है मधुसूदन! मुझको तुमने बतलाया।
मन की चंचलता के कारण, सम्यक नहीं समझ पाया।।33।।

मन है दृढ़ औ' चंचल केशव! महा हठीला, अति बलवान्।
इसे रोकना वायु-वेग-सा, दुष्कर ही पड़ता है जान।।34।।

(शेष अगले अंक में)

श्री रामलाल प्रभवे नमः श्री चन्द्रमोहन सद्गुरवे नमः

योग साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक महोत्सव

सभी गुरुभाई-बहनों को सूचित किया जाता है कि अपने योग साधन आश्रम, रेलवे रोड, ऋषिकेश का **वार्षिक महोत्सव** ज्येष्ठ शुक्ल अष्टमी, नवमी और दशमी **दिनांक 9,10,11 जून 2011** तद्नुसार गुरुवार, शुक्रवार और शनिवार को बड़ी धूम-धाम से मनाया जा रहा है।

अतः सभी गुरुभक्तों से निवेदन है कि इस त्रिदिवसीय भव्य आयोजन में अपने परिवार एवं इष्ट-मित्रों सहित सम्मिलित होकर श्री प्रभुजी, गुरुजी का आशीर्वाद प्राप्त करें तथा उच्चकोटि के विद्वानों द्वारा योग सिद्धान्तों पर आधारित प्रवचन का लाभ लें।

जय गुरुदेव !

निवेदक

आचार्य पूर्णचन्द शर्मा

योग साधन आश्रम, रेलवे रोड

ऋषिकेश

आजीवन ग्राहकों को सूचना

सिद्धयोग के आजीवन ग्राहक जो सन् 1997 के पहले के बने हैं उनको 15 से अधिक वर्षों से पत्रिका भेजी जा रही है। 15 वर्ष पूरा होने पर सदस्यता समाप्त मानी जाती है। अतः सन् 1997 से पूर्व के ग्राहक हैं उन्हें चाहिए कि पुनः 850 रु. शुल्क जमा कर दें अन्यथा उनकी पत्रिका रोकी जा सकती है।

जय गुरुदेव !

प्रबन्ध सम्पादक

''सिद्धयोग'' मासिक

'विज्ञातारमरे केन विजानीयात'

-: स्वामी विवेकानन्द :-

विज्ञातारमरे केन विजानीयात — विज्ञाता को कैसे जानोगे? ज्ञाता को कोई जान नहीं सकता, क्योंकि यदि वह समझ में आने योग्य होता, तो वह कभी ज्ञाता न रह जाता और यदि तुम आइने में अपनी आँखों का बिम्ब देखो, तो तुम उन्हें अपनी आँखें नहीं कह सकते, वे कुछ और ही हैं, वे बिम्बमात्र हैं। अब बात यह है कि यदि यह आत्मा — यह अनन्त सर्वव्यापी पुरुष साक्षी मात्र हो, तो इससे क्या हुआ? वह हमारी तरह न चल फिर सकता है, न जीता है, न संसार का संभोग कर सकता है। यह बात लोगों की समझ में नहीं आती कि जो साक्षी स्वरूप है, वह किस तरह आनन्द का उपभोग कर सकता है। "हे हिन्दुओ, तुम सब साक्षी स्वरूप हो, इस मत से तुम लोग निष्क्रिय और अकर्मण्य हो गये हो" — यह बात लोग कहा करते हैं। उनकी इस बात का उत्तर यह है, "जो साक्षी स्वरूप है, वही वास्तव में आनन्दोपभोग कर सकता है।" अगर कहीं कुश्ती लड़ी जाती है तो अधिक आनन्द किन्हें मिलता है? — जो कुश्ती लड़ रहे हैं उन्हें या जो दर्शक हैं उन्हें?

इस जीवन में जितना ही तुम किसी विषय में साक्षी स्वरूप हो सकोगे उतना ही तुम्हें उससे अधिक आनन्द मिलता रहेगा। यथार्थ आनन्द यही है और इस युक्ति से तुम्हारे लिए अनन्त आनन्द की प्राप्ति तभी सम्भव है, जब तुम इस विश्व ब्रह्माण्ड के साक्षी स्वरूप हो सको। तभी मुक्त पुरुष हो सकोगे। जो साक्षी स्वरूप है, वही निष्काम भाव से स्वर्ग जाने की इच्छा न रख, निन्दा-स्तुति को समदृष्टि से देखता हुआ कार्य कर सकता है। जो साक्षी स्वरूप है, आनन्द वही पा सकता है, दूसरा नहीं। अद्वैतवाद के नैतिक भाग की विवेचना करते समय उसके दार्शनिक तथा नैतिक भाग के अन्तर्गत एक और विषय आ जाता है, वह मायावाद है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत एक एक विषय के समझने में ही वर्षों लग जाते हैं और व्याख्या करने में महीनों लग जाते हैं, इसलिए इसका मैं उल्लेख मात्र ही करूँगा। इस मायावाद को समझना सभी युगों में बड़ा कठिन रहा है। मैं तुमसे संक्षेप में कहता हूँ, मायावाद वास्तव में कोई वाद या मत विशेष नहीं है, वह देश, काल और निमित्त की समष्टि मात्र है — और इस देश, काल, निमित्त को आगे नाम-रूप में परिणत किया गया है। मान लो समुद्र में एक तरंग है। समुद्र से समुद्र की तरंगों का भेद सिर्फ नाम और रूप में है, और इस नाम और रूप की तरंग से पृथक कोई सत्ता भी नहीं है, नाम और रूप दोनों तरंग के साथ ही हैं, तरंगें विलीन हो जा सकती हैं, और तरंग में जो नाम रूप है, वे भी चाहे चिर काल के लिए विलीन हो जायें, पर पानी पहले की तरह सम मात्रा में ही बना रहेगा। इस प्रकार यह माया ही तुममें और हममें, पशुओं में और मनुष्यों में, देवताओं और मनुष्यों में भेदभाव पैदा करती है। सच तो यह है कि यह माया ही है जिसने आत्मा को मानो लाखों प्राणियों में बाँध रखा है और उनके परस्पर भिन्नता का बोध नाम और रूप से ही होता है। यदि उनका त्याग कर दिया जाय, नाम और रूप दूर कर दिये जायें, तो वह सदा के लिए अन्तर्हित हो जायेगी, तब तुम वास्तव में जो कुछ हो, वही रह जाओगे। यही माया है। और फिर यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है, केवल तथ्यों का कथन मात्र है।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

अखबार (कागज) को बाजार में स्थापित करने के लिए एक असरदार एवं प्रभावशाली योजना–

[illegible]

1. [illegible]

2. [illegible]

3. [illegible] 1000 [illegible] 500.00 [illegible]

4. [illegible]

5. [illegible]

6. [illegible] 100/- [illegible]

7. [illegible]

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/2008-11

MAY 2011

प्रेषक कार्यालय :

सिद्धयोग

[illegible]

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सैंथली (शमशाबाद) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री

संस्थापक :- [illegible] मुद्रक एवं प्रकाशक [illegible] आगरा [illegible] आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14588 सम्पादक : [illegible]